* वन्देमातरम् *

सुप्रसिद्ध देशभक्त

राजा महेन्द्रप्रताप

लेखक—

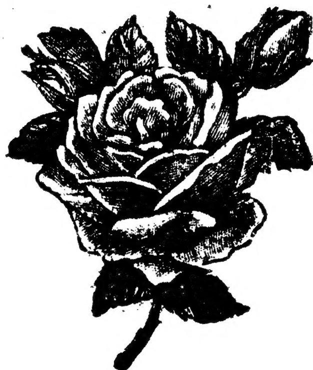
श्रीगोविन्द हयारण, 'साहित्य-व्याख्यान-भूषण'

भूतपूर्व सम्पादक

'कर्त्तव्य' 'हलधर' और 'दैनिक-भविष्य'

प्रथमावृत्ति } १९८३ वि० { मूल्य केवल ॥=)

प्रकाशक—
गोविन्द-भवन
इकदिल, (इटावा)।



मुद्रक—
बनारसी-दत्त शर्मा,
राजेन्द्र प्रिन्टिङ्ग प्रेस, दिल्ली।



यह पुस्तक

भारतीय राष्ट्र की भावी आशाके पुंज

भारतीय नवयुवक-दल

को

सादर समर्पित

की जाती है

जिनके लिये राजा साहब का जीवन

आदर्श एवं पथ-प्रदर्शक



है।

—लेखक

कृतज्ञता-प्रकाश

इस पुस्तक के लिखने में मुझे 'प्रेम' 'हलधर' 'तेज' 'वर्तमान' 'आज' 'विश्वमित्र' 'नवयुग' और 'प्रताप' आदि पत्रों से सहायता लेना पड़ी है। आवश्यक चित्रों के प्राप्त करने में पं० शिवनारायणजी मिश्र व्यवस्थापक 'प्रताप' तथा बा० श्रीरामजी गुप्त असिस्टेण्ट जनरल मैनेजर प्रेम महाविद्यालय से सहायता मिली है। अस्तु उक्त पत्रोंके सम्पादकों और संचालकों तथा इन सज्जनों का अत्यन्त ही कृतज्ञ हूं।

विनीत

—लेखक



विषय-सूची

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

परिशिष्ट





ओह! आराम तलबी की गोद में पलेहुओं को नारकीय यातनाओं के सहने में मज़ा क्यों आता है? जो पलना में पलते हैं, जिनके ललाट के प्रस्वेद बिन्दुओं को पोंछने के लिये दास दासियां उपस्थित रहती हैं, जिनकी उंगली के इशारे मात्र पर सहस्रों दास दासियां दौड़ पड़ती है, वह देश देशान्तरों के जङ्गलों की खाक छानने में ही क्यों आनन्द मनाते हैं? हां, केवल स्वतन्त्रताके लिये! संसार की सबसे प्यारी वस्तु स्वाधीनता के लिये !!

जिसके हृदयमें स्वाधीनता का अग्नि प्रज्वलित हो चुकी हो, भला, उसे पराधीनता के अन्धकार में चैन कहां! चाहे समस्त संसार उसका विरोधी हो जावे, चाहे आजन्म उसे कारागार की यातनायें सहना पड़ें, चाहे समस्त जीवन जंगलों की खाक छानने में ही व्यतीत करना पड़े और चाहे उसका जीवन ही समाप्त हो जावे पर वह अपनी आराध्य देवी स्वतन्त्रता की खोज करने में ही आनन्द मनाता है। संसार का नियम भी यही है, जिसे प्यास लगती है वह पानी की खोज मे इधर उधर

भटकता फिरता है और जब तक पानी नहीं मिल जाता वह चैन नहीं लेता। यही दशा आज राजा महेन्द्र प्रताप की है।

भारत के ही नहीं, संसार भर के मनुष्य राजा साहब के नामसे परिचित हैं। आप इस समय विश्व-विख्यात हैं, कोई आपको 'त्यागमूर्ति' मान कर स्मरण करता है तो कोई 'आदर्श महान् पुरुष' समझ कर। कोई आपको 'आज़ादी का मतवाला, कहता है तो कोई 'साम्राज्य का शत्रु'। कोई 'प्रेम पुजारी' के नाम से पुकारता है तो कोई 'स्वाधीनता का उपासक' कह कर! कोई 'प्रेम महाविद्यालय का संस्थापक' समझता है तो कोई 'अफग़ानिस्तान का नागरिक'। आज मैं उन्हीं राजा महेन्द्र प्रताप का संक्षिप्त जीवन चरित्र लेकर पाठकों के संमुख उपस्थित होता हूं। इस समय मुझे हर्ष भी है और संकोच भी क्योंकि पुस्तक लिखने का यह पहिला ही अवसर है इसलिये कुछ हर्ष अवश्य होता है परन्तु संकोच इसलिए है कि उस महापुरुष की पवित्र जीवनी को अंकित करने के लिये जिस योग्यता और अनुभव की आवश्यकता है वह मुझमें नहीं है।

राजा साहब ने सन् १९१४ में यह सोचकर कि 'जर्मनी की सहायता से भारत को स्वाधीन बनाऊं" यूरोपको प्रस्थान किया था और आज भी भारतकी स्वाधीनता के लिये उद्योग कर रहे हैं, मैं राजा साहब के इन विचारों से सहमत नहीं। भारत स्वाधीनता चाहता है पर दूसरों की सहायता से नहीं। जो स्वाधीनता अन्य राष्ट्रों की सहायता से प्राप्त होगी वह स्थायी नहीं

रह सकती। भारत को तो वही स्वाधीनता चाहिये जो वह स्वयं अपने पैरों के बल पर खड़ा होकर प्राप्त करे। ऐसी स्वाधीनता चिरस्थायी होगी। अन्य कोई भी राष्ट्र फिर भारत को पराधीनता की बेड़ियों में न जकड़ सकेगा। अन्य राष्ट्रोंकी सहायता से स्वाधीनताका प्रयत्न करना मेरी तुच्छ बुद्धि में भूल है। हाँ, इतना मैं अवश्य मानता हूं कि भारतकी स्वाधीनता के लिये संसार के अन्य राष्ट्रों की सहानुभूति प्राप्त करना लाभदायक है—इसके लिये राजा साहब ने जो कुछ उद्योग किया है वह प्रशंसनीय है।

मैं चाहे राजा साहब के मार्ग से सहमत होऊं या न होऊँ पर इसमें सन्देह नहीं कि राजासाहबने देशकी सेवा करने के विचार से अनुपम त्याग किया है, स्वदेशकी स्वाधीनता के लिये अपने प्राण हथेली पर रख लिये हैं। आपने जिस मार्ग का अनुसरण किया है उससे कभी पैर पीछे नहीं हटाया चाहे कितनी भी आपत्तियां उठानी पड़ी हों—यही बात आपके जीवन चरित्र में विशेष मार्क की है और प्रत्येक भारतीय के लिये अनुकरणीय है।

राजा साहब का हृदय बहुत ही उज्ज्वल, स्वभाव अत्यन्त ही सरल और विचार बहुत ही पवित्र हैं, आपकी साधु प्रकृति और स्वाधीनता के मतवालेपन ने ही मुझे यह पुस्तक लिखने को बाध्य किया है। यदि राजा साहब के समस्त गुणों और कार्यों का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया जाय तो एक बहुत भारी ग्रन्थ

तैयार हो सकता है पर उससे सर्व साधारण लाभ नहीं उठा सकते—यही सोचकर इस छोटी सी पुस्तक लिखने की धृष्टता की है। वास्तव में इतने कम पृष्ठों में राजासाहबका जीवन चरित्र लिखना 'गागरमें सागर' भरने के समान है जो कि अत्यन्त कठिन कार्य है। मैं नहीं समझता कि मैं कहां तक इस कार्य को पूर्ण करने में सफल हुआ हूं।

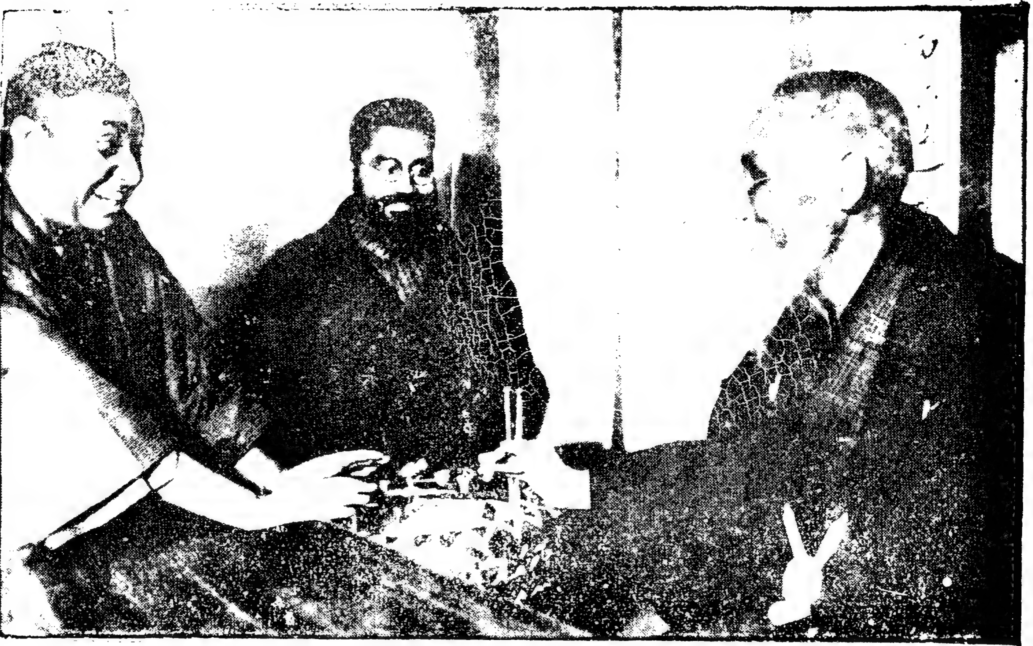
जिस समय मैं प्रेममहाविद्यालय बृन्दावन के मुख पत्र 'प्रेम' के सम्पादकीय विभाग में था उस समय राजासाहब के जीवन सम्बन्धी घटनाओंका अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मेरे अभिन्न हृदय मित्र वैद्य बालमुकुन्द वर्म्मन और प्रेममहाविद्या-लयके सुयोग्य ड्राइङ्ग मास्टर पं० दानविहारीलाल शर्मा ने उस समय इस कार्य में मुझे यथेष्ट सहायता दी थी। इसलिये मैं उनका विशेष आभारी हूं।

सन् १९२४ में 'हलधर' में मैंने एक लेख माला राजासाहबके सम्बन्ध में प्रकाशित की थी जिसे पढ़कर अनेक मित्रों ने पुस्त-काकार संग्रहीत करने का अनुरोध किया। उन्हीं मित्रों की प्रेरणा से कुछ परिवर्तन के साथ यह पुस्तक लिखी गयी है।

प्रूफ संशोधक की असावधानी से कई स्थान पर भद्दी भूलें रह गयी हैं जैसे पृष्ठ १३ में *Religion* के स्थान पर *Relizion* और पृष्ठ १५ में *Visit* के स्थान *Viist* छप गया है। पाठक सुधार कर पढ़ें।

गोविन्द-भवन इकदिल
दीपावली सं० १९८२

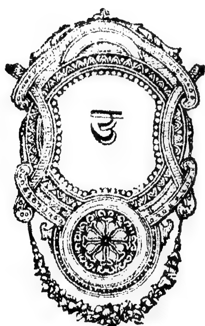
श्री० गो० हयारण



"राज़ा साहब ने रासबिहारी बोस के साथ जापान भ्रमण किया।" पृष्ठ ३९ ।



पहला अध्याय



स विश्व विभूति के सुन्दर पुष्पोद्यान में, जहाँ कुछ पुष्प ऐसे होते हैं जिन्हें देव मन्दिरों में देवी देवताओं के सिर चढ़ अपने जीवन को सफल बनाने का अभिमान होता है, कुछ राजा महाराजाओं के विलास भवन में सुख शैय्या पर पड़कर अपने भाग्य पर इतराते हैं, कुछ प्रेमी प्रेमिकाओं के गले के हार बन अपनी शान पर इठलाते हैं और कुछ राज्य दरबारों में गुल दस्ते बनकर अपने को धन्य समझते हैं तहां कुछ पुष्प ऐसे भी होते हैं जिनके परमल पराग से चाहे बन उपवन महक उठे पर संसार उनके

नाम को भी नहीं जानता। साधारण से साधारण युद्ध को लेकर संसारव्यापी महा समरों में अनेक वीर अपने खून की नदियाँ बहा कर दुश्मनों के दाँत खट्टे कर देते हैं और उनकी ही वीरता, धीरता और बलिदान के कारण विजय प्राप्त होती है पर संसार उनके नाम को जानता भी नहीं है, वह जानता है केवल उनके नायक को, जिसके माथे पर विजय श्री बंधती है। गत संसार व्यापी यूरोपीय महा समर में अनेक भारतीय वीरों ने अपने प्राणों की आहुति देकर जर्मनी को नीचा दिखाया पर संसार में विजय बृटेन की ही कहलाई और उन वीरों का कहीं नाम तक नहीं सुनाई देता। यही दशा हमारे चरित्र-नायक राजा महेन्द्र प्रताप की है। राजा साहब ने देश की सेवा में अपना तन, मन, धन सभी लगा दिया पर भारतवासी उनके नाम से बहुत ही कम परिचित हैं, यद्यपि भारत के बाहर आप अन्य देशों में काफी प्रसिद्धि पा चुके हैं।

जन्मभूमि—संयुक्त प्रान्तमें अलीगढ़ एक जिला है। उसी जिले में बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे के किनारे मुरसान एक छोटा सा ग्राम है। कुछ समय पूर्व यह एक छोटी सी रियासत थी। इसके अधिकारी सर० घनश्याम सिंह थे। सन् १८५७ के सिपाही विद्रोह के समय सर० घनश्याम सिंह ने अंग्रेजी को विशेष सहायता दी थी जिसके उपलक्ष्य में बृटिश सरकार ने सर० घनश्याम सिंह को 'राजा बहादुर' की उपाधि दी थी, सम्वत् १९४३ में

राजा महेन्द्र प्रताप ने आप के ही गृह में जन्म लिया। मुरसान के निकट अलीगढ़ जिले में ही हाथरस भी एक व्यापारिक नगर है। यह भी उस समय छोटा सा राज्य था। इसके उत्तराधिकारी 'राजा बहादुर' सर० घनश्याम सिंह के ही घराने के सर० हरनारायण सिंह थे। आपके कोई पुत्र न था। इसलिये राजा महेन्द्र प्रताप का २॥ वर्ष की अवस्था में आपने गोद ले लिया। अभी बालक महेन्द्र प्रताप को गोद लिये ७ वर्ष भी व्यतीत न हुये थे कि सन् १८९५ ई० में सर० हरनारायण सिंह अपने एक मात्र दत्तक पुत्र को बिलखता हुआ छोड़ स्वर्ग सिधारे।

रियासत सरकारी प्रबंध में—सर० हरनारायण सिंह का स्वर्ग वास हो जाने पर हाथरस राज्यके उत्तराधिकारी राजा महेन्द्र प्रताप हुए, परन्तु अभी वह नाबालिग़ थे। भारत सरकार के कानून के अनुसार रियासत का प्रबन्ध Court of wards (कोर्ट आफ वार्ड्स) के हाथ में चला गया जिसकी ओर से एक एजेण्ट नियुक्त हुआ, अब वही राज्य का सारा प्रबन्ध करने लगा।

शिक्षा—पहले राजा साहब को घर पर ही प्रारम्भिक शिक्षा दी गयी। आप की बुद्धि तीव्र थी और स्वभाव बहुत ही सरल। आप हाई स्कूल में किसी भी सहपाठी से लड़ाई झगड़ा न करते और सब से प्रेम रखते थे। अध्यापक इस सरल स्वभाव, सादगी और प्रेम को देख कर बड़े ही प्रसन्न रहते। यही नहीं, रियासत का एजेण्ट भी आपकी प्रकृति और स्वभाव को देख कर

मुग्ध हो जाता था। वह कहा करता था कि महेन्द्र प्रताप होनहार बालक है। हाई स्कूल से एन्ट्रेन्स (S. L. C.) की परीक्षा उत्तीर्ण कर राजा साहब ने मुहम्मडन एंग्लोओरिंटियल कालिज (Mohammedan Anglo Oriential College) में प्रवेश किया परन्तु थर्ड ईयर अर्थात् बी० ए० क्लास की प्रथम वर्ष तक ही अध्ययन कर कालिज छोड़ दिया।

नेपोलियनके रूप में—एक लोकोक्ति है कि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" यही लोकोक्ति राजा महेन्द्र प्रताप के सम्बन्ध में चरितार्थ होती है, आप जब बाल्यकाल में अपने सहपाठियों के साथ खेलते तो 'नेपोलियन की सेना' बनाते और आप स्वयं फ्रान्सके प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता नेपोलियन बनते और झण्डा ले कर आगे चलते थे। उस समय यह किसी को स्वप्न में भी ख्याल न था कि जो बालक आज खेल में क्रान्तिकारी नेता बन कर झण्डा उठा रहा है वह वास्तव में किसी समय संसार में सुप्रसिद्ध होगा ?

विवाह—जब राजा महेन्द्रप्रताप की अवस्था १६ वर्ष की हुई तो झींद के 'महाराजा बहादुर' ने अपनी छोटी बहिन के साथ आपका विवाह कर दिया। विवाह होने के बाद राजा साहब ने अपना निवास स्थान हिन्दुओं की परम पुनीत पुण्यमयी और आनन्द कन्द व्रजचंद भगवान श्री कृष्ण की क्रीड़ा भूमि वृन्दावन में नियत किया। विद्यार्थीजीवन में भी राजा साहब अक्सर

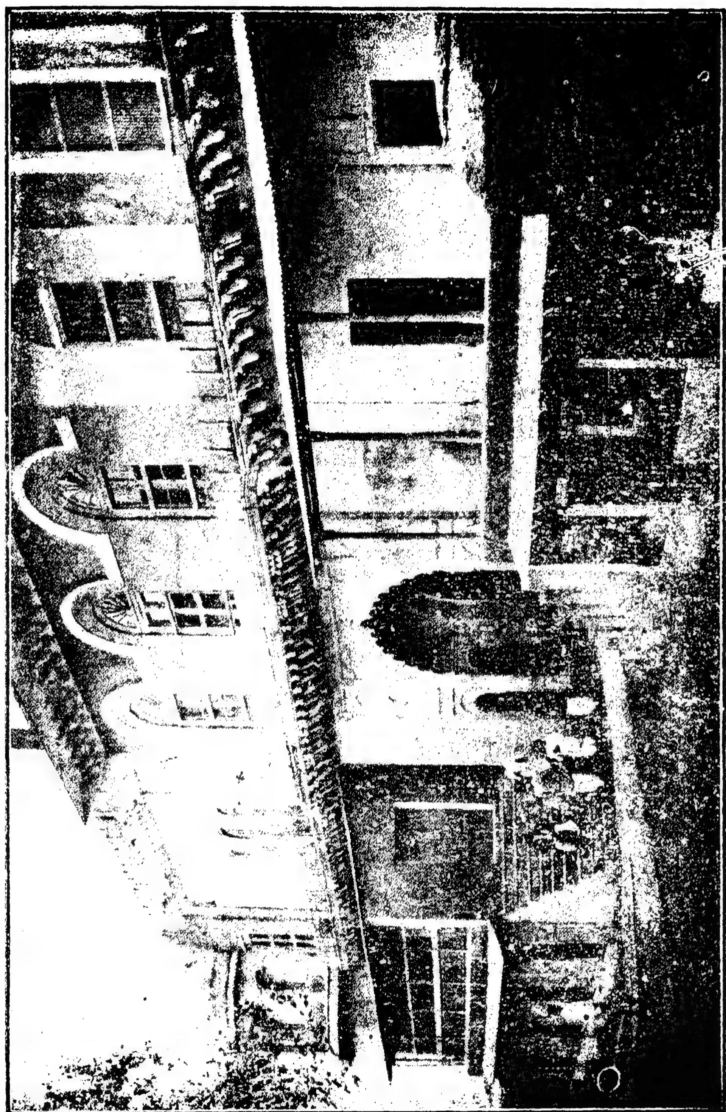
वृन्दाबन आते जाते रहते थे। बालिग होने पर सरकार ने रियासत का प्रबन्ध कोर्ट आफ़ वार्ड्स की आधीनता से पृथक कर राजा साहब के ही हाथ में दे दिया।

यूरोप यात्रा—प्राय: देखने में आया है कि भारत वर्ष के सभी नरेश युवावस्था में यूरोप भ्रमण को जाया करते हैं। सम्भवत: इसी प्रथानुसार राजा महेन्द्र प्रताप भी १८ वर्ष की अवस्था में यूरोप गये। आप के साथ में रानी साहिबा भी थीं। वहां इङ्गलेण्ड, इटली और अन्य यूरोपीय देशों के मुख्य मुख्य नगरों का भ्रमण किया। आपने शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं को देखने में विशेष समय व्यतीत किया। थियेटर, लाइब्रेरी, पब्लिक पार्क आदि देखने के साथ ही साथ शिल्प शिक्षा के बड़े बड़े कालिजों का ध्यान पूर्वक निरीक्षण किया। उस समय आपके हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि भारत वर्ष में भी ऐसे शिल्प शिक्षा और कला कौशल के स्कूल खोले जायँ तो देश को बहुत लाभ हो।

जिस समय राजा साहब यूरोप से भारत के लिये लौट रहे थे, उस समय आप की रानी साहिबा ज्वर से पीड़ित हो गयीं, जिससे आप बहुत घबड़ाये और ईश्वर से प्रार्थना की "यदि रानी साहिबा शीघ्र ही आरोग्य हो जावें तो मैं तेरी प्रसन्नता के लिये भारत पहुंच कर कोई अच्छा कार्य अवश्य करूंगा।" परमब्रह्म परमात्मा ने राजा साहब की प्रार्थना स्वीकार कर ली और

महारानी साहिबा आरोग्य हो गयीं। उसी समय आपने अपने हृदय में एक सार्वजनिक संस्था स्थापित करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। वृन्दावन आने पर पंडों ने आपको घेरा, आपने उन्हें समझाया और कहा कि "भिक्षावृत्ति छोड़ दो। भिखमंगे निर्धन राष्ट्र पर भार स्वरूप हैं और इन्होंने ही भारत का सर्वनाश किया है। लूले लंगड़े अपाज लोगों को भिक्षाव्रत करने का अधिकार है। हृष्ट पुष्ट मनुष्यों को भिक्षा न मांगना चाहिये।"

प्रेम महाविद्यालयकी स्थापना—जिस समय राजा साहब ने यूरोपीय शिक्षा संस्थाओं को देखा था उसी समय वृन्दावन में एक शिक्षा-संस्था स्थापित करने का विचार किया था। दूसरे समुद्र यात्रा में अपनी पत्नी की अस्वस्थता के समय एक सार्वजनिक शिक्षा-संस्था स्थापित करने का संकल्प किया था। इसलिये आपने सन् १९०९ में अपने इष्ट मित्रों, सहपाठियों नेताओं, राजा महाराजाओं, संबन्धियों आदि को सूचना दी कि 'मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है। इसके उपलक्ष्य में २४ मई सन् १९०९ को वृन्दावन में उत्सव होगा।" निमंत्रित व्यक्तियों ने राजा साहब को तार द्वारा बधाई भेजी परन्तु उन्हें वास्तविक रहस्य का पता न था। वह सब निश्चित तारीखको वृन्दावन पधारे। राजा साहब ने पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय जी पर अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट करदी। मालवीयजी की अध्यक्षता में एक सभा की गयी! राजा साहब



प्रेम महाविद्यालय भवन—सामने का दृश्य।

ने इस उत्सवका आशय बतलाते हुए वास्तविक रहस्य को प्रकट कर दिया। आपने कहा कि "मैंने एक निःशुल्क राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था स्थापित करने का आयोजन किया है जिसमें शिल्प और कला कौशल की शिक्षा दी जावेगी। आप इसका नामकरण कीजिये। यही मेरा पुत्र है और इसी के जन्मका उत्सव है।" राजा साहब के इस रहस्यमय कथन पर सब के सब चकित हो गये और अत्यन्त हर्ष प्रकट किया। इस संस्था का नाम प्रेम महाविद्यालय रक्खा गया। राजा साहब की इच्छा थी कि समस्त रियासत प्रेम महा विद्यालय को दान कर दी जावे परन्तु आपकी माता जी तथा अन्य परिवार बन्धुओं ने ऐसा करने से रोका। अन्त में आपने अपनी आधी रियासत, ३३ हजार रुपये की वार्षिक आय की प्रेम महा विद्यालय को दे दी। अपना महल भी विद्यालय को दे दिया। प्रबन्ध के लिये एक कमिटी बना दी जिसमें कुंवर हुक्मसिंह जी रईस आंगई (मथुरा) और बा० नारायणदास जी बी० ए० आदि को ट्रस्टी बनाया। आप स्वयं आनरेरी गवर्नर बने। समस्त भारत में यह पहिला ही औद्योगिक महाविद्यालय है। आनन्द कन्द वृजचंद भगवान् श्रीकृष्णकी क्रीड़ा भूमि श्री वृन्दावन धाम में पवित्र पावनी श्री यमुना के तट पर यह विद्यालय स्थापित है, जहां से प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त ही मनोहर दिखलाई देता है। श्री यमुना जी की लहरें और तट के वृक्षों का सौन्दर्य्य देखते ही मनमयूर नाचने लगता है।

सरकार से असहयोग—जिस असहयोग आन्दोलन को म० गांधी ने सन् १९२१ में चलाया–राजा साहब उसके पहले ही से अनुयायी थे। महात्मा जी ने असहयोग कार्य्य क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा, उपाधि और शस्त्र त्याग, स्वदेशी प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार और ग्राम्य संगठन आदि रक्खा था। राजा साहब ने इसका पूर्णत: पालन सन् १९०९ से १९१४ तक किया। राष्ट्रीय शिक्षा प्रचार के लिये प्रेम महा विद्यालय की स्थापना के पश्चात् आपने अपने अस्त्र शस्त्र सरकार को सौंप दिये। अछूतोद्धार, ग्राम्य सङ्गठन और हिन्दूमुस्लिम–एकता के लिये राजा साहब ने जो जो कार्य किये उनका विवरण प्रसङ्गानुसार अन्यत्र दिया जावेगा।

पुत्रीका जन्म—परम ब्रह्म परमात्मा की कृपा से प्रेम महा विद्यालय की स्थापना के कुछ दिन बाद ही राजा साहब के एक पुत्री उत्पन्न हुई जिसका नाम "भक्ति" रक्खा गया।

गुरुकुलको दान—सन् १९११ में श्रीमती संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा ने गुरुकुल को फर्रुखाबाद से हटाकर बृन्दावन लाने का विचार किया परन्तु वह समय ऐसा न था कि सनातनधर्मी स्थानों में आर्यसमाजी सरलता पूर्वक प्रवेश कर लेते। बृन्दावन के सनातनधर्मावलम्बी पण्डितों और पण्डोंने बृन्दाबन में गुरुकुलकी स्थापना का घोर विरोध किया, वह मरने मारने को तैयार हो गये, बहुत प्रयत्न करने पर भी

संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा को गुरुकुल के लिये स्थान न मिला। राजा साहब ने यह देखकर ही पण्डों के विरोध करते रहने पर भी वृन्दावन के दक्षिण में श्री यमुना के तट पर १५ हजार रुपये की अपनी भूमि गुरुकुल को दान कर दी। आपके इस कार्य से वृन्दावनकी जनता बहुत ही क्रुद्ध हुई पर आपने किंचित परवाह न की। इस भूमिकी रजिस्ट्री ५ अक्टूबर सन् १६११ को श्रीमती संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के नाम हुई। आजकल वृन्दावन में नित्यप्रति उन्नति करता गुरुकुल जो दिखलाई दे रहा हैं उसका बहुत कुछ श्रेय राजा महेन्द्रप्रताप को ही है। आर्यसमाज आपके इस उपकार को कभी भूल नहीं सकता।

'प्रेम' का प्रकाशन—राजा साहब ने देखा कि हिन्दू समाज में अनेक कुरीतियों ने अपना अड्डा जमा लिया है जिससे नई २ कुरीतियां प्रचलित होती जा रही हैं, 'धर्म' के नाम पर आपस में वैमनस्य फैल रहा हैं। इन कुरीतियों को दूर करने के विचार से १५ अप्रैल सन् १६१२ को आपने "प्रेम" नाम का दशाहिक पत्र प्रकाशित किया जिसका उद्देश्य धार्मिक मतभेद को छोड़कर सामाजिक कुरीतियों को दूर करना, समस्त संसार में प्रेम और भारतीय जनता में राजनैतिक शिक्षाका प्रचार करना निश्चित किया। पत्र में सदैव खरी, खरी, और निर्भीक सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखने के कारण धर्म के अन्ध विश्वासी और पुरानी

लीक पीटने वाले पण्डित आप से बहुत ही अप्रसन्न हुए परन्तु आप अपने कर्त्तव्य पथ से विचलित न हुए ।

अछूतोद्धार का प्रयत्न—राजा साहब ने 'प्रेम' द्वारा अछूतोद्धार का प्रयत्न किया, उसमें बराबर अछूत-समस्या पर लेख लिखते रहे। प्रायः देखने में आता है कि अधिकांश उपदेशक अछूतोद्धार का आन्दोलन तो करते हैं परन्तु स्वयं उसे व्यवहार रूप में नहीं लाते। यह बात आप में न थी। आप व्यवहार वादी थे। जितना भी कहते उतना स्वयं करते भी थे। आप अपने यहाँ अछूतों को नौकर रखते और उनके साथ समानता, सभ्यता तथा मनुष्यता का वर्त्ताव करते। एक बार आपको एक रसोइया की आवश्यकता पड़ी तो आपने 'प्रेम' में आवश्यकता प्रकाशित करते हुए लिखा कि 'वही सज्जन आवेदन पत्र भेजें जो अछूतों से परहेज न करते हों।'

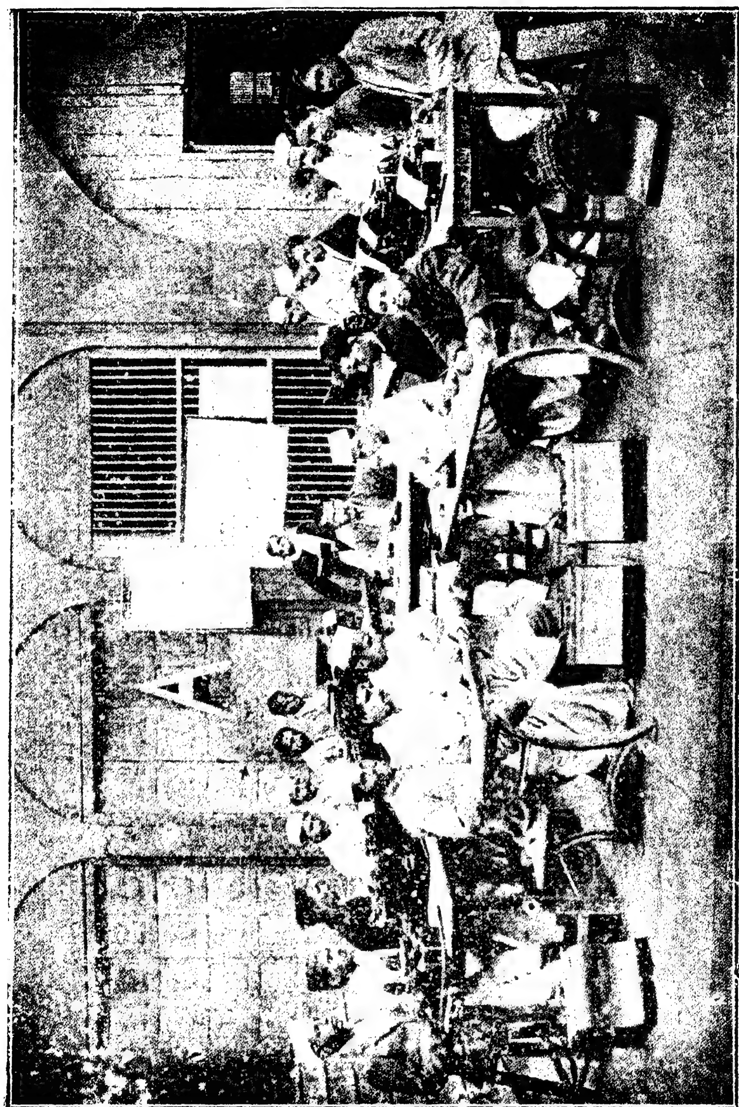
दूसरी यूरोप यात्रा—सन् १९१२ के अन्त में राजा साहब ने फिर यूरोपयात्रा का विचार किया। आपने यह भी सोचा कि "प्रेम महाविद्यालय के समस्त विद्यार्थियों को साथ ले जावें, एक जहाज किराये पर रिजर्व कराकर संसार भ्रमण किया जाय, उसीमें प्रतिदिन चार घण्टे शिक्षाध्ययन हो।" अहा! कितना ऊंचा विचार था !! आपको विद्यार्थियों से कितना अधिक प्रेम था !!! पर आपके मित्रों ने ऐसा न करने दिया। 'प्रेम' का सम्पादन छोड़ कर उसे विद्यालय का मुखपत्र बना दिया और

आप स्वयं अकेले ही स्वीटजरलैण्ड, इटली, इंग्लैण्ड आदि की यात्रा के लिये रवाना हुए परन्तु अधिक समय तक न रह कर सन् १९१३ में भारत लौट आये। इसी समय आपके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम 'प्रेम प्रताप' रक्खा गया।

ग्राम्य संगठन—राजा साहब को किसानों से अधिक प्रेम था। आप उनका सुदृढ़ सङ्गठन करना चाहते थे। आपने यूरोप से लौट कर सन् १९१३ में देहरादून में 'निर्बल सेवक समाज' की स्थापना की। 'निर्बल सेवक' नाम का पत्र प्रकाशित किया। मुरादाबाद जिले में भ्रमण कर किसानों का सङ्गठन करना आरम्भ किया। अन्य जिलों में भी भ्रमण करने का विचार था परन्तु भारत से चले जाने के कारण पूरा न हो सका। सन् १९२५ में राजा साहब ने काबुल से भारतीय किसानों के नाम एक संदेश भेजा था उसमें आपने स्वयं लिखा है कि "मुझे बहु-काल से किसानों और किसान सेवा में प्रेम रहा है। इसीलिये सन् १९१३-१४ में देहरादून में 'निर्बल सेवक समाज' की स्थापना की थी, मुरादाबाद जिले में गांव गांव घूमा था और अन्य जिलों में भी किसी प्रकार चक्कर लगाने का विचार था। 'निर्बल सेवक' पत्र भी किसानों और दूसरे समाजों की सेवा हितार्थ निकाला था। यदि महाभारत शीघ्र ही आरम्भ न हो गया होता और मैं महाभारत में सेवा विचार से भारत न छोड़ बैठता तो कदाचित आज भी भारत में किसानों की सेवा में लगा

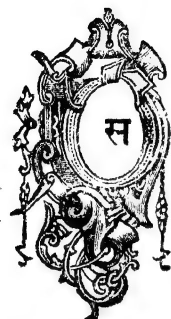
रहता, परन्तु मनुष्य इच्छा से ईश्वर इच्छा प्रबल है और जो हरि इच्छा, उसी में हमारा भी प्रयत्न है। इसलिये मैं तो जहां भी जो भी सेवा मिलती है उसी को कर आनन्दित होता हूँ परन्तु जो आज भारत में रह कर किसानों की सेवा करना चाहते हैं उन्हें मैं धन्य समझता हूँ। कुछ स्वभाव व स्वप्रकृति, कुछ इच्छा व चाह से, कुछ दया धर्म के विचार से मैं बहुकाल से किसानों का शुभचिन्तक अवश्य था परन्तु मुझे 'हलधर' के नाम से आज ही विदित हुआ कि हमारे पूज्य श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलदेव (हलधर) किसान प्रेमी थे। यही नहीं, वह मज़दूर और श्रमजीवियों के भी नायक थे। इसीलिये तो हल के साथ मूसल भी उनका कर-आभूषण था। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि किसानों और श्रमजीवियों की सेवा करना धर्म की आज्ञा पालन करना है।"





प्रेममहाविद्यालय में कामर्स-शार्टहैंड क्लास।

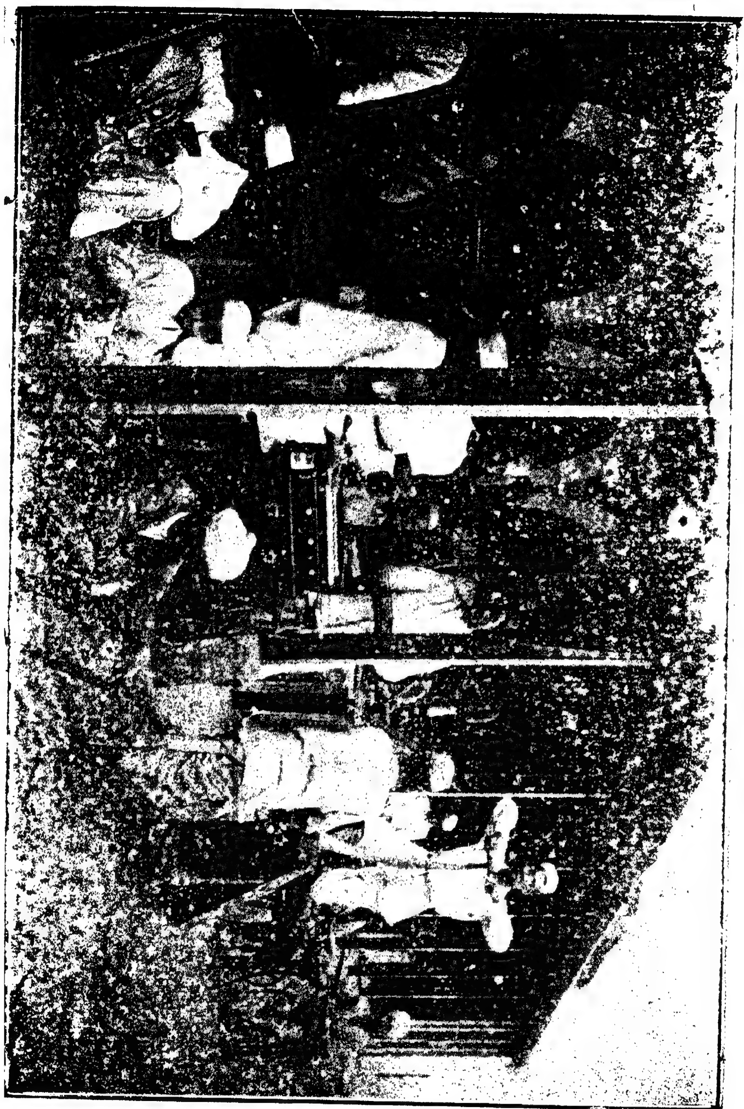
दूसरा अध्याय



सन १९१४ में यूरोपीय महासमर आरम्भ हुआ। उस समय राजा साहब की आयु केवल २८ वर्ष की थी। आप एक दिन मंसूरी से बृन्दाबन जारहे थे। मार्ग में एक अंग्रेजी समाचार पत्र में इस महायुद्ध के आरम्भ होने का समाचार पढ़ा। आपने अपने एक मित्र से, जो उसी ट्रेन से यात्रा कर रहे थे—वाद विवाद करना आरम्भ किया। इससे उस मित्र पर तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा पर राजा साहब ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि इस युद्ध का प्रभाव समस्त संसार पर पड़े बिना न रहेगा। आपका स्वास्थ्य अच्छा न था परन्तु फिर भी युद्ध देखने की इच्छा से यूरोप जाने का विचार किया। आपने सोचा कि सम्भवतः भारतवर्ष को स्वतन्त्र करने में जर्मनी से सहायता मिल सके। *The New Relizion* नामक पुस्तक में आपने स्पष्ट लिखा है कि "*In the year 1914, just after the break out of war, I thought that we could profitably utilize the Germany's help in freeing India from the British yoke. With some such thoughts, after the consultation of my friends, I came to*

Europe firstly with a view to study tht situation of war." अर्थात् "सन् १६१४ में जैसे ही युद्ध छिड़ा, मैंने सोचा कि सम्भवतः हम भारत को अंग्रेजी जुएं से, स्वतन्त्र करने में जर्मनी की सहायता ले सकें, इन विचारों से अपने मित्रों के परामर्श के पश्चात् मैं युद्ध की परिस्थिति का अध्ययन करने के लिये यूरोप आया।"

प्रेम महाविद्यालय का समस्त भार अपने मित्रों को सौंप कर आपने १० दिसम्बर सन् १६१४ को वृन्दावन से प्रस्थान किया। साथ में आपके प्राइवेट सेक्रेटरी ब्रह्मचारी हरिश्चन्द्र (स्वा० श्रद्धानन्द के ज्येष्ठ पुत्र) भी थे। आप बम्बई पहुंचे पर पासपोर्ट नहीं लिया। पहिले एक जहाज ने बिना पासपोर्ट के ले जाने के इन्कार किया पर आप दूसरे जहाज पर सवार हो हो गये। मार्ग व्यय के लिये छः हजार रुपये के नोट ले लिये थे और आवश्यकता पड़ने पर बैङ्क से रुपया निकालने का प्रबंध कर लिया था। स्वेज़ नहर से गुजरते समय युद्धका दृश्य दिखलाई देने लगा। सौ सौ गज़ के फासले पर फौजें पड़ी हुई थीं, नहर के दोनों किनारों पर भारतीय सैना एकत्रित थी। 'इसमालिया' नामक स्थान पर कुछ घायल सैनिक भी दिखलाई दिये। उन लोगों से जहाज वालों ने दुआबन्दगी की। लाल-सागर से आगे चलकर आप माल्टा में ठहरे, वहां से आप मार्सलीज को रवाना हुए। आप पहले भी वहां तीन बार हो आये थे



कारपेन्टरी क्लास प्रेम महाविद्यालय।

पर इस समय दूसरा दृष्य था। बन्दरगाह पर सैना पड़ी हुई थी। वहां से आप स्वीटज़र लैंड जाने की आज्ञा प्राप्त कर जिनोवाकी ओर रवाना हुए। यहां पर डी० एलङ्गारटर नामक होटल में ठहरे। यह होटल एक झील के किनारे बना हुआ है। यूरोप के प्राय: सभी पत्र आते हैं। उन पत्रों में युद्धका वर्णन पढ़ने से आपको ज्ञात हुआ कि भारत में वैसे समाचार नहीं पहुंचते जैसे अन्य देशों में जाते हैं।

जर्मनी से निमंत्रण—इसी समय आपको जर्मन कैसरका निमंत्रण बर्लिन की भारतीय समिति द्वारा मिला†। आप जर्मनी की ओर चल पड़े। युद्धकाल में इटली अथवा स्वीटज़रलैंड से जर्मनी जाना कठिन कार्य था। राजा साहब तो किसी प्रकार निकल गये पर ब्रह्मचारी हरिश्चन्द्र न निकल सके। लाचार हो कर उन्हें इटली में रहना पड़ा पर बाद में आप इङ्गलैण्ड में नज़र कैद कर लिये गये। अब पता नहीं वह कहां है? उनकी स्त्री ने पता लगाने का बहुत प्रयत्न किया पर वह असफल रही।

कैसर से भेंट—जर्मनी पहुंच कर राजा साहब ने कैसर विलियम से भेंट की। कैसर महोदय ने आपका बड़ा अतिथि-सत्कार किया। सुना जाता है कि राजा साहब ने कैसर के साथ

---

†*When I was in Switzerland, I got an invitation, through the Indian Committee of Berlin, from German Government to viist Germany.* M. Pratap *(The New Gospel)*

साथ युद्ध क्षेत्र का भी निरीक्षण किया और बृटिश सरकार के एक हवाई जहाज़ ने ऊपर से फोटो लिया जिसमें राजा साहब और क़ैसर विलियम हाथ में हाथ मिलाये रणभूमि में खड़े हुए थे। यह चित्र यूरोपीय समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ और भारत सचिव ने उसका कटिंग मथुरा के जिलाधीश के पास भेजा। पता नहीं यह अफ़वाह कहां तक सत्य है। अभी तक न तो भारत सरकार ने ही और न राजा साहब ने ही इस पर कुछ प्रकाश डाला है।

जर्मनी में पहिला कार्य—राजा साहब ने जर्मनी पहुंच कर सब से पहला जो कार्य किया उसका विवरण आपने स्वयं एक समाचार पत्र में इस प्रकार लिखा है कि "मैंने जर्मनी सरकार से ज़रूरी कागजात तैयार करवाये, उनमें महत्व पूर्ण कागज वह थे जो भारतीय नरेशों के नाम पत्र लिखे गये थे। ये पत्र जर्मन, उर्दू और हिन्दी भाषा में छपे थे और लाल चमड़े के सुन्दर मकोड़ में बन्द किये गये थे। कैसर जर्मन ने अमीर अफगानिस्तान के नाम भी एक पत्र लिखा वह जर्मन और अफगानी भाषा में था।"

इसी समय एक जवान डाक्टर आउटवानहीनग भी जर्मनी पहुंचे। आप पहले जर्मनी की ओर से तेहरान में रह चुके थे। इनको सीमा पर से इसलिये बुलाया गया था कि वह राजा महेन्द्र-प्रताप से मिलकर कार्य करें। इनको भी एक पत्र अमीर काबुल के



"जर्मनी से एक इण्डो-जर्मन-तुर्किश-मिशन रवाना हुआ" पृष्ठ १७ ।

नाम दिया गया जो कि जर्मन चान्सलर की ओर से लिखा गया था। इस पत्रमें यह भी लिखा था कि "यह मनुष्य आपके पास राजा महेन्द्रप्रताप को पहुंचायेगा। यह राजा साहब भारतवर्ष की स्वतंत्रता के लिये प्रयत्न कर रहे हैं। यदि आपकी सरकार इनको कुछ सहायता देगी तो मैं बड़ा कृतज्ञ होऊंगा। राजा-साहब जर्मनी की कुल बातें आपको बतला सकते हैं और डाक्टर होनग को आपसे बातचीत करने का जर्मन सरकार अधिकार देती है। वह जो कुछ आप से ते करेंगे वह जर्मन सरकार को स्वीकार होगा।"

राजा साहबने एक जर्मनी कैद खाने का भी निरीक्षण किया, इस केद खाने में राजनैतिक कैदी थे जिनमें कुछ भारतीय सैनिक भी थे। राजा साहब ने उन से दशा पूछी—उन्होंने कहा कि "हमें कोई कष्ट नहीं है परन्तु खाने में कोई ऐसी वस्तु न मिली रहना चाहिये जिससे हमारे धर्म पर आघात होता हो।" राजा साहबने यह बातें उच्च अधिकारियों से कह दीं और यह भी सिफारिश की कि "खाने के साथ थोड़ा सा मक्खन भी मिलना चाहिये।" उच्च अधिकारियोंने आपकी बात स्वीकार कर ली।

तुर्किस्तानकी यात्रा—जर्मनी से एक *Indo-German Turkish-Mission* (इण्डो जर्मन तुर्किश-मिशन) रवाना हुआ। राजा साहब भी इस मिशन के सदस्य थे। पहले आप कुछ दिनों तक कुस्तुन्तुनियाँ के आस पास रहे। वहां

आपकी अब्बास अली से भेंट हुई जो कि मिश्र के खदीव थे। आप तख्त से उतार दिये गये थे। खदीव ने अपने २३ वर्ष के शासन का अनुभव बतलाते हुए राजा साहब से कहा कि "मैं बड़ी ईमानदारी के साथ अंग्रेजों से बर्ताव करता था परन्तु अंग्रेज सदा मुझे संदेह की दृष्टि से देखते रहे, जब मैंने मिश्र की स्वाधीनता का प्रश्न उठाया तब वे मुझे बहुत तंग करने लगे। अंग्रेजों ने रेलवे लाइन छीन ली। यदि मैं मिश्र का खदीव न होता तो बहुत अच्छी जिन्दगी बसर करता।"

राजा साहब वायना, बुदापेष्ट, सूफिया और एडियानोपुल होते हुए कुस्तुन्तुनियां पहुँचे। यहाँ एक होटल में ठहरे। एक तुर्की सेनापति से भी भेंट हुई, मिश्र के शाहजादा, मिश्र के वृद्ध वज़ीर सयादुलहलीम और शेफुलइस्लाम से भी भेंट की। इन लोगों में से बहुत से तो युद्ध के बाद क़त्ल कर दिये गये।

तुर्किस्तान में—अनवर पाशा से असतम्बोल के उस शाही महल में—जहां सैनिक विभाग का बड़ा दफ्तर था—राजा साहब की भेंट हुई। अनवर पाशा को राजा साहब का कार्य मालूम था। उसने कहा कि "यह कार्य कठिन है।" अनवर पाशा ने विदा होते समय राजा साहब से यह भी कहा कि 'कुछ तुर्क सैनिक और अफसर आपको अफगानिस्तान तक पहुंचा आवेंगे।'

सुल्तान से भेंट—बासफोरस के पास तुर्किस्तान के भूत पूर्व सुल्तान गाजीनजीम से राज्य भवन में राजा साहब की प्राइवेट बातचीत हुई। महल के दरवाजे पर सुल्तान के एडीकांग ने स्वागत किया। राजा साहब ने सुल्तान से अपना उद्देश्य कह सुनाया। सुल्तान ने आपकी सफलता के लिये ईश्वर से प्रार्थना की। इस समय भूपाल के मौ० बर्कत्तुल्लाहभी आप के साथ थे। सुल्तान के भान्जे सुल्तान यूसुफ ने आपको भोज दिया।

तुर्की से विदाई—१ मई सन १६१५ को राजा साहब कुस्तुन्तुनियां से रवाना हुए। आपके साथ दो जर्मन अफसर भी हो गये। आप अपना सामान ले कर वासफोरस खाड़ी के पास पहुंचे। स्टेशन पर हैदरपाशा से भी भेंट हुई। रेल पर सवार हो कर आप कोमीना शहर में पहुंचे। यह शहर उस्मान राज्य की प्राचीन राजधानी थी। यह एक प्राचीन एतिहासिक स्थान है, इसी जगह अलालुद्दीन रोमी की क़ब्र है। यहां से फिर रेल में सवार हो कर यात्रा आरम्भ की। दिन भर यात्रा करने के बाद बजानती पहुंचे। यह बगदाद रेलवे का आखिरी स्टेशन है। एक रात आप यहां रहे। यहां पर एक विचित्र घटना हुई, कोई छायादार स्थान न मिलने के कारण खुले मैदान में राजा साहब को सोना पड़ा। सर्दी अधिक मालूम होती थी पास में जितने कम्बल थे उनसे सर्दी दूर नहीं हुई। अन्त में

राजा साहब ने स्टेशन के आस पास दौड़ लगाना आरम्भ की, इस से सर्दी दूर हुई।

बजानमी से घोड़ा गाड़ी में चल कर दर्रों को पार किया। रोमसागर के तट पर मरसीना पहुंचे। वहां से ओरना होते हुए उस्मानी पहुंचे। यहां पर खिच्चर किराये पर करके सलमहा गये। यहां से रेल में सवार हो कर हलब पहुंचे। हलब से मसल्मियां होते हुए जिवरावलस नामक स्थान पर ठहरे। यहां से वोट द्वारा नदी में यात्रा आरम्भ की। आप के पास इतना अधिक सामान था कि १०० जानवरों पर लदा हुआ था उस के लिये एक वोट पृथक ही करनी पड़ी। उस समय उस नदी में—जिसका नाम फरात है—बाढ़ आई हुई थी। इससे बहुत तेज़ी के साथ वोट चल रही थी। कई दिन तक यात्रा करने के पश्चात् आप फलूजा पहुंचे।

बग़दाद की यात्रा—फलूजा से घोड़ा गाड़ी में सवार होकर राजा साहब बगदाद आ गये। यहां पर अंग्रेज़ों के खुफिया आदमी (गुप्तचर) घूमा करते थे। राजा साहब जर्मन राजदूत के बङ्गले पर ठहरे। आप को जर्मन राजदूत ने आम तौर पर टहलने की आज्ञा न दी क्योंकि वृटिश गुप्तचरों के कारण राजा साहब का गिरफ्तार हो जाना सम्भव था। बगदाद से ? जून को फिर यात्रा आरम्भ की। कई टूटी फूटी गाड़ियों में सामान भर दिया गया। राजा साहब गाड़ी के एक पटरे पर

Податель сего [illegible] находится въ Россіи на пути [illegible]
Всѣ власти Республики [illegible] оказывать ему [illegible] препятствій въ пути. [illegible] ПРАТАПЪ [illegible] его въ услуженіи г. [illegible]-Али.-

Председатель Военно-Революціоннаго Коммиссаріата

Секретарь

ПЕТРОГРАДСКАЯ КОММУНА.
ВОЕННО-РЕВОЛЮЦІОННЫЙ КОММИССАРІАТЪ.
„11" Марта 1918 года.
№ 110.
Петроградъ
Смольный Институтъ
Комната № 51.

УДОСТОВѢРЕНІЕ.

Предъявитель сего, Раджа М[illegible]ендра ПРАТАПЪ находится въ Россіи проѣздомъ [illegible]. Намѣренъ ѣхать черезъ Германію.

При немъ находятся: личный секретарь его г. Григорій Хезановичъ и находящійся у него въ услуженіи г. Ма[illegible]-Али.

Всѣ власти Россійской [illegible] Совѣтской Республики [illegible] оказывать [illegible] содѣйствіе [illegible] ПРАТАПУ и его спутникамъ.-

[illegible] Военно-Революціоннаго Коммиссаріата

Секретарь

"एक पत्र अमीर काबुल के नाम दिया गया जो जर्मन चान्सलर की ओर से लिखा गया था।" पृष्ठ १७

लेट गये। भारी सामान सन्दूकों में भरा हुआ गदहों पर लादा गया। एक एक गाड़ी पर तीन तीन आदमी लेटे हुए यात्रा कर रहे थे। रास्ता बहुत तंग था। दिन में अधिक धूप पड़ने के कारण रात्रि में ही यात्रा की जाती थी।

कुछ दिनों में राजा साहब फारिस की सीमा पर पहुंच गये। इस सीमा के एक ग्राममें एक दिन आप ठहरे भी। यहाँ पर न तो सैनिक प्रबन्ध था और न कोई चुंगी लेने वाला ही अफसर। बड़ी कठिनाई से यहां अर्बी घोड़े मिले। इन पर सवार होकर आप करिन्द नामक स्थान पर पहुंचे। यहां आप रऊफ बे की सेना में ठहरे। यही रऊफ बे बाद में अंग्रेज़ सरकार के प्रधान मंत्री हुए। रऊफ बे ने राजा साहब को समझाया कि बृटिश सरकार ने तुर्की जहाजों को नष्ट कर युद्ध के लिये बाध्य किया है।

करिन्द से राजा साहब अनाराक की ओर रवाना हुए परन्तु अंधेरी रात में रास्ता भूल गये। पानी के तालाबों से दूर जा निकले। रास्ते में खारी पानी मिलता था, जानवर तथा आदमी सभी पानी के लिये तड़पने लगे पर कहीं पानी का पता नहीं चला। अन्तमें एक नखलिस्तान में जा निकले। यहां पानी मिला, यहां मीठे अंजीर, बादाम और खजूर के पेड़ थे। राजा साहब एक सराय में ठहरे। कुछ देर आराम करने के बाद फिर यात्रा आरम्भ की। आप एक छोटी सी बस्ती में

पहुंचे जिसका नाम था जाफरा। यहां पर राजा साहब को किसीने सूचना दी कि 'बृटिश सरकार ने उनकी गिरफ्तारी का प्रबन्ध किया है।' इसलिये यहां से राजा साहब का काफिला-कई विभागों में बँट कर इधर उधर हो गया परन्तु अन्तमें सब लोग मुहम्मदी नामक ग्राममें पहुंचे। यह ग्राम एक बहुत छोटा सा नगला है-यहां पर सराय बहुत टूटी फूटी थी, निवासी सभी निर्धन थे, वह इस क़ाफिले से डरे क्योंकि वह लोग इस क़ाफिले को डाकू-दल समझते थे। उन्होंने क़ाफिले के हाथ कोई चीज़ बेचना भी उचित न समझा। मार्ग की इन कठिनाइयों से राजा साहब के साथी ईरानी लोगों ने साथ छोड़ने का निश्चय किया परन्तु फौजी अफसर ने समझा बुझा कर साथ रहने पर राजी कर लिया। यहां राजा साहब एक सप्ताह तक ठहरे क्योंकि उनके कुछ आदमी पीछे रह गये थे, उनका इन्तजार था। राजा साहब के कुछ जासूस भी आने वाले थे जो रूस का समाचार लेने गये थे।

गिरफ्तारी का प्रबंध—इधर राजा साहब भ्रमण कर रहे थे उधर बृटिश सरकार और रूसी सरकार आपकी गिरफ्तारी का प्रबन्ध कर रही थी। एक दिन जब कि राजा साहब मुहम्मदी नगर में ठहरे हुए थे-कुछ गर्द उड़ते हुये देखी-आपको भय हुआ कि कहीं दुश्मन तो नहीं आ रहे हैं परन्तु वह उनके ही साथी निकले। उनके साथ एक अमेरिकन जासूस और है

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

"तुर्किस्तान के सुल्तान का पत्र अमीर साहब को दिया" पृष्ठ २३

हंगेरियन सिपाही थे जो कि तुर्किस्तान के रूसी कैम्प के कैदखाने से निकल भागे थे। राजा साहब ने उनका स्वागत किया। थोड़े दिनों बाद आप के गुप्तचरों ने बतलाया कि हमारे शत्रु इस समय ईरान के पूर्वी पहाड़ी में छिपे हुए हैं। उत्तर में महसूद की ओर से रूसी सैनिक आ रहे हैं, दक्षिण की ओर से बृटिश सेना भी आ रही है। पानी मिलने वाले समस्त स्थानों पर शत्रुओं के जासूस पहुंच चुके हैं। महसूद से नसीराबाद तक तार की लाइन लगा दी गई है। राजा साहब इस खतरे से अपने को बचाते हुये २ अक्टूबर सन् १९१५ को काबुल आ पहुंचे।

रियासतकी जब्ती—उधर राजा साहब यूरोप में भ्रमण कर रहे थे इधर भारत सरकार ने उनकी रियासत जब्त करली। आपकी दोनों माताओं, पत्नी, पुत्री तथा पुत्र के लिये मासिक पेंशन नियत कर दी। आपका पुत्र "प्रेम प्रताप" देहरादून में सरकारी निगरानी में विद्याध्ययन करने लगा।

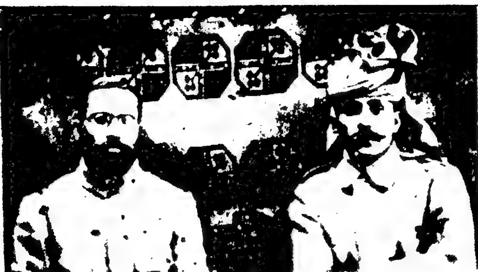
काबुलमें कार्य—काबुल में राजा साहब अमीर अफगानिस्तान के ही महल में ठहरे। जर्मन कैसर और तुर्किस्तान के सुलतान के पत्र अमीर साहबको दिये। इन पत्रों में क्या था और अमीर साहब से क्या बात चीत हुई इस सम्बन्ध में राजा साहब ने "*The New Gospel*" नामक पुस्तक में लिखा है कि "*We wanted that Afganistan should declare war on English in India*, अर्थात् 'हम लोगों ने चाहा

कि "अफगानिस्तान भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध घोषणा करदे परन्तु अमीर साहब ने ऐसा करने में असमर्थता प्रकट की क्योंकि उनका तुर्किस्तान और जर्मनी से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था* अमीर साहब ने आपका खूब आतिथ्य सत्कार किया और राजाकी उपाधि से विभूषित कर 'अफगानिस्तान का नागरिक' बनने का अधिकार दिया। एक सुन्दर तलवार भी भेंट की। राजा साहब ने अफगानिस्तान के भिन्न भिन्न भागों का भ्रमण किया और राज्य व्यवस्था का निरीक्षण किया।

फिर जर्मनी में—सन् १९१८ तक राजा साहब अफगानिस्तान में ही रहे। तत्पश्चात् आपको अमीर साहब ने जर्मन कैसर और तुर्किस्तान के सुल्तान के नाम पत्र दिये। इन पत्रों को लेकर राजा साहब यूरोप की ओर रवाना हुए। आप रूस होते हुए जर्मनी पहुंचे। कैसर को अमीर साहबका पत्र देकर तुर्किस्तान चले गये। वहां सुल्तान को पत्र देकर फिर जर्मनी लौट आये और बर्लिन में रहने लगे।

अफगान-युद्ध—बहुत समय से अफगान सरकार पर भारत सरकार का प्रभुत्व जमा हुआ था। अमीर अफगानिस्तान को भारत सरकार से कुछ वार्षिक पेंशन भी मिलती थी जिससे वह

But Amir Sahib found it imposible because he had no direct connection with Turkish and German Governments.
M. Pratap (The New Religion)



[illegible]

۳ [illegible]
۱۳۰۰

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] از خداوند عالم [illegible]

[illegible]

[illegible] ختم کلام میکنم فقط (عبدالکریم [illegible])

"कैसर को अमीर अफगानिस्तान का पत्र दिया" पृष्ठ २४ ।

किसी अन्य राष्ट्र को भारत पर आक्रमण करने के लिये मार्ग न दें। सन् १६१६ में अमीर साहब मार डाले गये और तीसरे पुत्र अमानुल्ला खां गद्दी पर बैठे। अफगानिस्तान में पूर्ण स्वाधीनता की लहर उठी। अमीर साहब ने भारत सरकार का प्रभुत्व हटाने की इच्छा की। इधर भारत में भी सरकार के प्रति घोर असन्तोष फैल रहा था। रौलट एक्ट पास हो चुका था, महात्मा गांधी ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी थी, पंजाब में मार्शलला जारी था, अमृतसरमें जलियान वाला हत्याकाण्डकी घटना हो चुकी थी—ठीक इसी समय अफगानिस्तान सरकार ने उत्तर पश्चिमी सीमा पर अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया। जब यह समाचार जर्मनी पहुंचा तो राजा महेन्द्रप्रताप अफगानिस्तान के लिये रवाना हुए।

लेलिनसे भेंट—जर्मनी से अफगानिस्तान आते समय मार्ग में रूस के भाग्य विधाता मि० लेलिन से भेंट की और वर्त्तमान राजनीतिक परिस्थिति पर परामर्श किया। राजासाहब के अफगानिस्तान पहुँचने से पूर्व अफगान-भारत युद्ध समाप्त हो चुका था। भारत सरकार ने अफगानिस्तान को स्वाधीन राष्ट्र मानकर मित्रता पूर्ण समझौता कर लिया था।

अफगानिस्तानमें सुधार—अब अफगानिस्तान पर भारत सरकार का आधिपत्य नहीं है। वह पूर्ण स्वाधीन राष्ट्र है। वह किसी भी अन्य राष्ट्र से सन्धि कर सकता है। इस स्वा-

धीनता के कारण सन् १६१८ के अफगानिस्तान में और आज के अफगानिस्तान में जमीन आसमान का अन्तर है। वहां बड़े बड़े सुधार हुए। राज्य व्यवस्था का फिर से उत्तरदायत्वपूर्ण शासन के ढंग पर प्रबन्ध हुआ। प्रजा को अधिक अधिकार दिये गये। राजा साहब ने स्वयं १८ मास भ्रमण कर अफगानिस्तान की राज्य व्यवस्था सुधारने में अमीर अमानुल्ला खां को यथेष्ट सहायता दी है। अब अमीर अन्य राजा महाराजाओं की भांति भोग विलास में लिप्त नहीं रहते। वह अपने को प्रजा का सेवक समझते हैं। बहुत ही साधारण रीति से रहते और शुद्ध खद्दर का व्यवहार करते हैं। इस सुधार का अधिकांश श्रेय राजा महेन्द्रप्रताप को ही है।

चीन यात्राका विचार—राजा साहब ने चीन तिब्बत और जापान की यात्राका विचार किया। अमीर अफगानिस्तान ने चीन के राष्ट्रपति और जापान के सम्राट के नाम पत्र दिये। आपने पहिले संसार की छत पामीर पर्वतकी यात्रा करने का प्रबंध किया।

पामीर यात्रा—अगस्त सन् १६२१ के आरम्भ में राजा॰ साहब ने अफगानिस्तान से रवाना होकर पामीर पर्वत की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। पामीर हिन्दू कुश पर्वत के उत्तर पूर्वमें है। इसको लोग संसार की छत भी कहते हैं। यह १२ हजार से १४ हजार फुट तक ऊंचा स्थान है। इस भाग में मकान

नहीं हैं और न खेती ही हो सकती है। केवल किरगिल जाति के लोग अपने डेरों में रहते हैं और समूह के समूह भेड़ें पालकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। राजा साहब पहिले भी दो बार इस भूखंड का भ्रमण कर चुके थे परन्तु सन् १९२१ में तीसरी बार फिर भ्रमण किया। १४ अगस्त को राजा साहब आकवेतल (तुर्की शब्द-अर्थ गोरी घोड़ी) की घाटी में पहुंचे। संध्या समय इसी घाटी में एक वेफट (डाक बँगला) मिला। यह टूटा फूटा पड़ा था, तुर्किस्तान सरकार ने इस वियावान जंगल में यात्रियों की सुविधा के लिये बनवाया था। राजासाहब घोड़े से उतर कर जल्दी २ उस डाक बंगले में सोने के लिये स्थान ढूंढ़ने लगे। कुछ रूसी सिपाही पहिले से ही इस बंगले में आकर डेरे लगा चुके थे। राजा साहब ने भी उसी कमरे में अपना बिस्तरा लगाना पसंद किया। थोड़ी देर में ऊंटों पर लदा हुआ उनका सामान भी आ गया। राजा साहब और उनके मित्रों ने अपना अपना बिस्तरा लगाया और सो रहे पर रात्रि में ही डाकुओं ने धावा किया। डाकुओं ने राजा साहब के पहरेदार सिपाहियों से युद्ध किया और कई घोड़े चुरा ले गये। राजा-साहब ने भी उनका पीछा किया पर सफल न हुए। इसी प्रकार कष्ट सहते हुए आपने पामीर पर्वतकी यात्रा समाप्त की इस यात्रा का वर्णन स्वयं राजा साहब ने लिखा हैं जो कि अत्यन्त ही मनोरञ्जक है। पाठकों के मनोरञ्जन के लिये वह ज्यों का त्यों दिया जाता है। राजा साहब लिखते हैं कि "आज

सारा दिन इसी आक बेनल की घाटी में बीता है। लो, वह पहुंचे। यह बेकट (डाकबँगला) रहा, यह रूसी राष्ट्र के बनवाये हुए बियावान स्थान हैं।

जल्दी से इस उजड़ी धर्मशाला के चौक में जा कर, घोड़े से उतर, मैं टूटे फूटे घरों में घुस कर रात के सोने की जगह ढूढ़ने लगा। थोड़े से रूसी सिपाही पहिले से पहुंच गये थे और दो कोठों में डेरा लगा चुके थे, किन्तु एक कमरा, कोठा और रसोई घर खाली था। यही हमारे लिये अनुकूल भी था, वही मैंने पसन्द किया।

हमारा असबाब ऊंटों पर अभी पीछे रह गया है, खजाना तो पहुंच गया, छः छोटी सन्दूकें हैं, प्रत्येक रात्रि को मैं इन्हें बराबर रखा कर अपना विस्तरा कर लेता हूँ।

आज १४ अगस्त (१९२१) है, तब भी इस दशा में सर्दी है। हम सभी अपनी पोस्तीना में लिपट कर अपने विस्तरे पर बैठ गये अथवा लेट गये। एक आस्टवी सर्व डाक्टर का विस्तरा मेरे बराबर है। उनके उस तरफ मेरे मित्र अफगानी कर्नल हैं। जिन्हें अफगानिस्तान राज्य ने मेरे साथ भेजा है। हमारे साथ रूसियों के कमाण्डर अर्थात् मुख्य फौजी सरदार का भी डेरा है। इसी कोठे में दो मेरे और एक कर्नल साहब के खानसामा के भी विस्तरे हैं। खिड़की के बाहर दो लम्बी दरियों पर हमारे तीन अफगानी मेहतर अर्थात् साईस और कर्नेल साहब का अर्दली



प्रेम महाविद्यालय का जमनाजी से दूर का दृश्य ।

अपने असबाब को चुन रहे हैं और हमारे बराबर वाले कोठे में हमारे रसोइयां, और कहार भोजन का प्रबंध कर रहे हैं। बहुत से रूसी बाहर चौक में अपना विस्तरा लगा रहे हैं और थोड़े रूसी अहाते से बाहर भी अपना झोला झंडा जमा चुके हैं।

रात्रि हो गयी, पहरे बैठाये गये, रूसी कमाण्डर ने मुझसे भी दो अफगानी मांगे। आज ही रात्रि को रसोइया और कर्नल साहब के अर्दली की बारी निश्चय की, इतने में भोजन तैयार हो गया। कर्नल साहब, डाक्टर साहब, रूसी कमाण्डर और मैंने एक ही थाल में भात खाया क्योंकि मैं यथाशक्ति मांस नहीं खाता, मेरे लिये पनीर की भाजी भी साथ थी। भोजन कर और पहरे वालों को विदा कर सो रहे।

आज रात्रि को विशेष दुर्घटना हुई। अभी दो बजे हैं, डाक्टर मुझे जगाते हैं, सुनो जी, बन्दूकों की आवाज सुनाई पड़ती है 'सच है शीघ्र तैयार होना चाहिये।' समस्त मित्रदल में हलचल पड़ गई। मैंने जल्दी से लम्बे सवारी के बूट पहिन लिये और अपनी भरी बन्दूक को हाथ में ले कर द्वार पर आया वहां सात आठ मनुष्य जमा थे। रूसी कमांडर हमारे बँगले से निकल मशीनगन वालों के पास गया पर अब तो और कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ती; हम फिर अपने विस्तरों पर आ बैठे। इतने में हमारे दो अफगान पहरेदार ऊँचे स्वर से बोलते आ पहुँचे; मैंने ६ कारतूस छोड़े, मैंने पांच चलाये, कोई भी हमारी सहायता

को नहीं पहुंचा।······खैर, हम तो मर जाते तो कोई डर नहीं पर सरकारी बन्दूकें चोरों के हाथ पड़ जाती······कर्नल साहब ने विश्वास नहीं किया, कदाचित् पहरे वालों का स्वप्न है। खैर साहब सवेरे यदि घोड़े कम हों तो हमें सच्चा जानना··· एक ओर तुफंग चली, यह तो कहीं निकट ही चली है। सावधान !

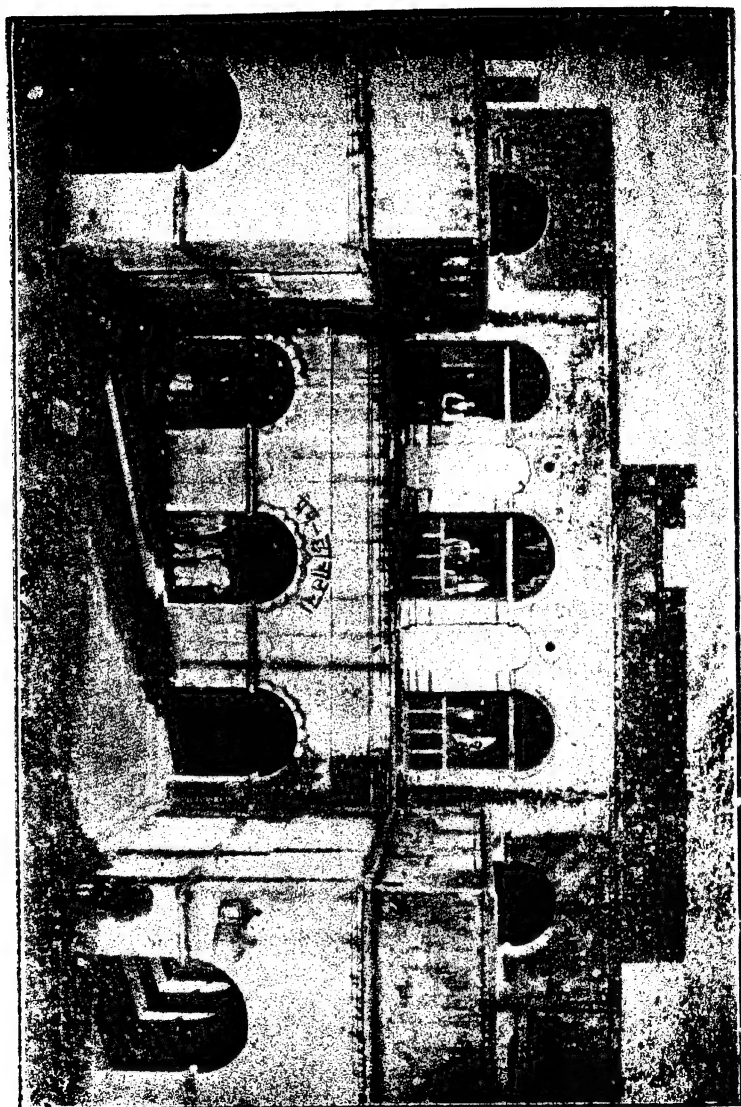
हम फिर जल्दी जल्दी बाहर निकले। मेरा अफगान खानसामा मुझसे आगे बढ़ा। डाक्टर साहब ने हमें आड़ में रहने को कहा और आप अंधेरे में गायब हो गये, हमारे ठीक सामने आग की एक ज्वाला चली और मिट गई। धड़ाम ! बन्दूक की फैर हैं। एक मेरे साथी ने मुझे पीछे खींचा, सब अपनी जगह जगह पर रहना, आगे न बढ़ना, कई एक एक साथ बोल उठे। एक सिगनी सिपाही ने कहा "देखो न, मैंने कहा था, यह चोर हैं और इनके पास देशी बन्दूकें है, हम खूब जानते हैं, रूसी बन्दूक से ऐसी आग नहीं निकलती।" वह रोशनी हुई, वह धड़ाका, फिर एक फैर हुई पर गोली का पता न चला। जिस ओर से ज्योति दिखाई देती थी और धड़ाके की आवाज़ आती थी उस ओर हम बहुत टकटकी लगाये देखते रहे। अब तो कुछ भी आहट नहीं, भाग गये। हम फिर अपनी अपनी जगह पर आ कर लेट रहे। जैसे तैसे एक घण्टा सोये। अब कूच करने के लिये तैयार हुए तो देखते क्या हैं कि नो घोड़े और पांच ऊंट गुम हैं, बहुतेरा

इधर उधर ढूंढा पर कहीं पता न चला। मैं भी इधर उधर घोड़े पर चढ़ा फिरता फिरा परन्तु बे अर्थ। हमारे भी दो घोड़े चोर ले गये। एक घोड़ा जो बहुत बलवान था और रुपये लादता था चोरी हो गया। सब ने सम्मति दी कि चोरों का पीछा करना चाहिये और करें भी तो क्या करें, बिना ऊंट घोड़ा पैदल चलना भी अति कठिन है।

बीस मनुष्यों को आज्ञा मिली कि वे दो भागों में नदी के दोनों किनारों पर पहाड़ी के नीचे देखते भालते फुरती के साथ बढ़ें। मैंने भी दो अफगानी साईसों को बन्दूक दे कर आगे भेजा, ज्योंही वह रवाना हुए दूर पर एक पहाड़ी के पीछे से कुछ लोग निकले, लो वह चोर हैं। कोई साठ सत्तर मनुष्य वह भी हैं। वह अपनी तलवारों और बर्छियों को घुमाते हैं, धूप की चकाचौंध में चमकती हैं। मैं दूरबीन से उन्हें देख रहा हूँ। धर्मशाला की छत पर पहरेदार सब दृष्टि कर अपना कर्त्तव्य पालन कर रहा है। मशीनगन, द्वार पर, थोड़े से पत्थरों के पीछे लगाई हुई है। पहरेदार ने ऊपर से मुझे बुलाया। एक ओर चोर बढ़ते दिखाई दे रहे हैं क्योंकि अच्छी दुरबीन (अफगान राज्य की भेंट) केवल मेरे पास है, रक्षक ने मुझ से कहा कि उस ओर देखूं। हां सत्य है कुछ लोग उधर से आ रहे हैं, दुरबीन को हाथ में लिये भीत पर चढ़ कर छत पर पहुंचा, यह तो कुछ खेल हुए न मानेगा क्या होता है,..........................।"

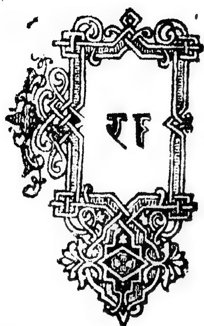
इसके पश्चात् राजा साहब चीन जाने लगे परन्तु अंग्रेजी राजदूत ने रुकावट डाली। फलतः राजा साहब अपनी इच्छा पूर्ण न कर सके। आपने चीनी अफसरों द्वारा चीन के राष्ट्रपति के पास अमीर अफगानिस्तान का पत्र पहुंचा दिया और शेष पत्र अमीर साहब के पास वापिस कर दिये। चीन यात्रा स्थगित कर जर्मनी पहुंचे। वहां बर्लिन में रहने लगे।





प्रेम छात्रालय।

तीसरा अध्याय



जा साहब ने यूरोप पहुँच कर कुछ दिनों तक तो भारत पत्र भेजे पर जब वह स्वीटज़र लैंड से जर्मनी चले गये तब भारत में उनके पत्रों का आना रुक गया। भारत से जो पत्र राजा साहब के नाम भेजे जाते वह *Not Claimed* (तकसीम नहीं हुये) हो कर वापिस आ जाते। इससे आपके परिवारबन्धु, इष्ट मित्र और प्रेम महा विद्यालय के अधिकारी वर्ग अति चिन्तित हुए क्योंकि राजा साहब का कुछ भी पता न चलता था कि इस समय कहां हैं और क्या कर रहे हैं। आप के मित्र कुँवर हुक्म सिंह जी रईस आंगई जिला मथुरा ने यूरोप के समाचार पत्रों में विज्ञापन दिया कि "राजा महेन्द्रप्रताप का जिस किसी व्यक्ति को पता ज्ञात हो वह सूचित करे–उसे उचित पारितोषिक दिया जायगा।" इस विज्ञापन को पढ़ कर जेनोवा निवासी मि० चेपलैन ने लिखा कि "मैं राजा साहब को भली प्रकार जानता हूँ, वह इतने उच्च विचार के सज्जन हैं कि मैं पूरा वर्णन नहीं कर सकता। मैं पारितोषिक नहीं चाहता। मैं तो केवल प्रेम-मूर्ति के दर्शन का भूखा हूँ। जब मुझे राजा साहब की बात याद आती है तो

मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। जब मुझे राजा साहब का पता लगेगा तब मैं लिखूंगा।' मि० चेपलैन पादरी थे-पहिले बम्बई रह चुके थे। वह राजा साहब के चिरपरिचित व्यक्ति थे।

राजा साहब का पता न लगने पर वृन्दावन निवासी बहुत ही निराश हुए। अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार की शंका कर रहे थे। कोई कहता था कि राजा साहब जर्मनी में हैं और कोई बतलाता था कि काबुल में- पर निश्चय रूप से किसी को भी पता न चला।

मार्च सन् १६२२ में 'प्रताप' में राजा साहब का एक पत्र प्रकाशित हुआ जिसमें जेनोवा शान्ति परिषद् के सम्बन्ध में लिखा था कि "यह परिषद् महज मज़ाक है। यदि बृटेन वास्तव में संसार में शान्ति स्थापन करना चाहता है तो उसे चाहिये कि अपना साम्राज्य छोटे छोटे राज्यों में बांट दे।" इस पत्र के नीचे हस्ताक्षर थे "राजा महेन्द्र प्रताप नागरिक अफ़गा-निस्तान" पर इससे यह पता नहीं चला कि राजा साहब कहां हैं? 'प्रताप' संपादक ने उपरोक्त पत्र के नीचे एक टिप्पणी लिखदी थी जिसमें लिखा था कि 'राजा साहब अफ़गानिस्तान के नागरिक कैसे बन गये। ?' इस टिप्पणी को पढ़ कर राजा साहब ने फिर एक पत्र भेजा जिसमें लिखा था कि "प्रताप-सम्पादक को मुझे अफ़गानिस्तान का नागरिक होते देख कर हर्ष मनाना चाहिये था क्योंकि मैं अब स्वतंत्र देश का नागरिक हूँ पराधीन देश का

नहीं रहा।" इस के बाद ही राजा साहब ने अपने परिवार-बन्धुओं को कुशल पत्र भेजा जिससे सब की शङ्का दूर हुई।

जर्मनी म प्रेम प्रचार—अप्रेल सन् १९२२ तक राजा साहब वर्लिन में ही रहे। वहां आपने सुख संस्थापक दल (*The Happiness Society*) स्थापित किया। इस दल का ध्येय समस्त संसार में प्रेम धर्मका प्रचार करना है। अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये आपने जर्मनी भाषा में दो पुस्तकें लिखीं जिनका भिन्न २ भाषाओं में अनुवाद भी कराया गया। पहली पुस्तक का नाम है 'सुख संस्थापक दलका कार्य क्रम' (*The Programme of Happiness Society*) इसमें दल के कार्य क्रम पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है। दूसरी पुस्तक का नाम है। 'प्रेम धर्म' (*The Religion of love*) इसमें प्रेम को एक धर्म मानकर उसके ६ उपदेश लिखे गये हैं।

भारतीय आन्दोलन पर दृष्टि—इस समय भारत में असहयोग आन्दोलन शिथिल पड़ चुका था और म० गांधी गिरफ्तार कर लिये गये थे। उस समय राजा साहब का ध्यान भारतीय आन्दोलनकी ओर गया। आपने उस शिथिलता का समाचार सुन कर भारत वर्ष के सेठ साहूकार, राजा महाराजा और जमींदारों के नाम एक छपा हुआ पत्र भेजा जिसमें लिखा था कि "*You know, you or your foreign Government are not stronger than the Kaisers of Germany and*

Austrailiya. Kaisers fled, Czar was murdered and merchants lost their all in Russia, your country brothers are coming forward, but sorry, the same shall happen to you, if you do not co-operate with them. अर्थात् तुम जानते हो कि तुम अथवा तुम्हारी विदेशी सरकार जर्मनी और आस्ट्रेलिया के कैसरों से अधिक बलवान नहीं है। कैसर भागे, ज़ार मारा गया और रूस में व्यापारियोंका सर्वनाश हुआ। तुम्हारे देशबन्धु आगे बढ़ रहें है-मुझे खेद है-वही दशा तुम्हारी भी होगी यदि तुम उनका साथ न दोगे। ×' दूसरा पम्फलेट "*Indian People*' (भारतीय जनता) के नाम से भेजा जिसमें म० गांधी के असहयोग आन्दोलन की चर्चा करते हुए लिखा कि 'यद्यपि चर्खा और खद्दर से मेरी पूर्ण सहानुभूति है परन्तु अब शीघ्र ही ऐसा समय आयेगा जबकि तुम्हारा काम केवल बुढ़ियों की भांति बैठकर चर्खा कातना ही न होगा वरन् उठ कर खड़ा होना होगा।'*

इन पम्फलेटों के अतिरिक्त राजा साहब ने वर्तमान परिस्थिति पर अपने कई लेख समाचार पत्रों में प्रकाशित करवाये।

फ्रांसकी यात्रा—मई सन १९२२ में राजा साहब बर्लिन से रवाना हुए और भ्रमण करते हुए सन् १९२३ के आरम्भ में फ्रांस

×'प्रेम' ता० २२-६-२२ *वर्तमान (कानपुर)

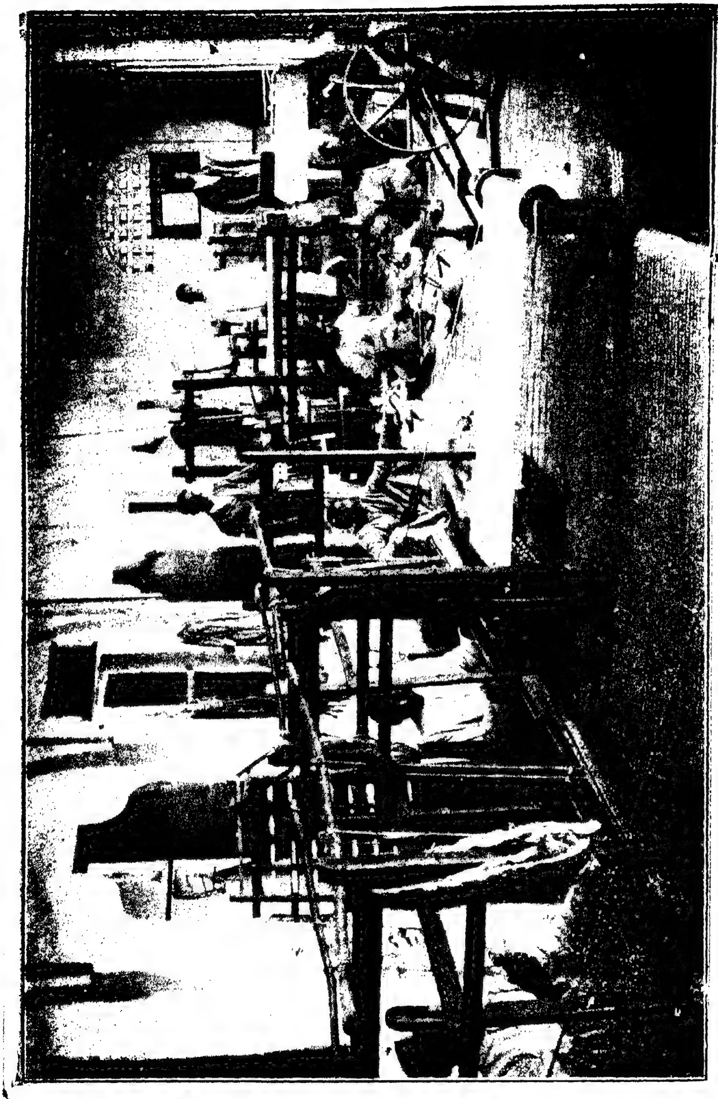
की राजधानी पेरिस पहुंचे। वहां एक होटल में ठहरे। कुछ दिनों बाद आप फिर वहां से चल पड़े और मास्को आये।

जापान यात्रा—मास्को से चलकर ३० अक्टूबर सन् १९२३ को राजा साहब जापान की राजधानी टोकियो आये। यहां आप कई सप्ताह ठहरे। भारत के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता रास-बिहारी बोस टोकियो में ही रहते हैं। आप सन् १९१५ में भारत से छिप कर जापान भाग गये थे। राजा साहब ने रास बिहारी बोस के साथ जापान में भ्रमण किया और स्थान स्थान पर भारतीय विद्यार्थियों को उपदेश दिये।

चीन भ्रमण—जापान से प्रस्थान कर राजा साहब चीन पहुँचे। यहां आपने प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों का भ्रमण किया। अंग्रेजी राजदूत राजा साहब के चीन पहुँचने पर बड़े परेशान हुए। उन्हें प्रतिदिन राजा साहब का समाचार तार द्वारा इङ्गलैण्ड भेजना पड़ता था। राजा साहब ने चीन और जापान में मित्रता स्थापित करने का पूर्ण उद्योग किया। तत्पश्चात् आप रूस होते हुये सन् १९२३ के अन्त में काबुल आ पहुंचे।

भारत सरकार और राजा साहब—सन् १९२४ के आरंभ में एक स्वराजी कौंसिलर ने संयुक्त प्रान्तीय कौंसिल में राजा साहब के सम्बन्ध में कई एक प्रश्न किये। सरकार ने उनका जो उत्तर दिया उसे पढ़ कर राजा साहब ने भारतीय समाचार

पत्रों में अपना वक्तव्य प्रकाशित करवाया। इस वक्तव्य से भारत सरकार और राजा साहब के सम्बन्ध पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। राजा साहब लिखते हैं कि "मुझे कई पत्रों द्वारा यह पता चला है कि किसी स्वराजी मेम्बर ने मेरे सम्बन्ध में कौंसिल में प्रश्न किये और किसी अंग्रेज ने मेरे सम्बन्ध में यह जवाब दिया कि मैं भागा हुआ अपराधी हूँ और अपनी इच्छा से अपराध स्वीकार कर भारत वापिस आ सकता हूँ। वास्तव में उस अंग्रेज़ का यह उत्तर, जो उसने अपनी सरकार की ओर से दिया, बड़ा अजीब है। अजीब इसलिए कि इसी अंग्रेज़ की सरकार ने कम से कम दस बार यह कोशिश की होगी कि मैं किसी प्रकार फिर भारत में आ जाऊँ। अंग्रेज सरकार ने मेरे रिश्तेदारों द्वारा यह खबर भेजी कि यदि मैं भारत वापिस आना चाहूँ तो वाइसराय मुझे माफ कर देंगे। मैंने उस समय यह उत्तर दिया कि मैंने जो कार्य आरम्भ कर दिया है उसे अधूरा नहीं छोड़ सकता। एक बार भारत सरकार ने एक दूसरे देश के दूत द्वारा प्रयत्न किया कि अंग्रेज़ी दूत से मिलूँ। यह जापान की बात है परन्तु श्री रासबिहारी बोस के यह कहने से, कि ऐसा करने से कमज़ोरी प्रमाणित होगी, मैंने अंग्रेजी दूत से मिलना भी पसंद नहीं किया। एक बार एक गोरे ने मुझे चाय की दावत दी और कहा कि मैं भारत क्यों नहीं लौट जाता। उसने यह भी कहा कि चीन में मेरे आने से अंग्रेज़ी राजदूत परेशान हैं और उन्हें प्रतिदिन मेरे बारे में तार द्वारा लन्दन



प्रेम महाविद्यालय की वस्त्रकला श्रेणी।

समाचार भेजना पड़ता है। उसने यह भी बतलाया कि मेरा जीवन खतरे में है। इस प्रकार कई बार मेरे भारत लाने का प्रयत्न किया गया परन्तु ऐसी·······सरकार के राज्य में रहना मेरे लिये असम्भव है। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि मैं या तो स्वतन्त्र भारत में ही लौटूंगा या भ्रमण में ही अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर दूंगा।" +

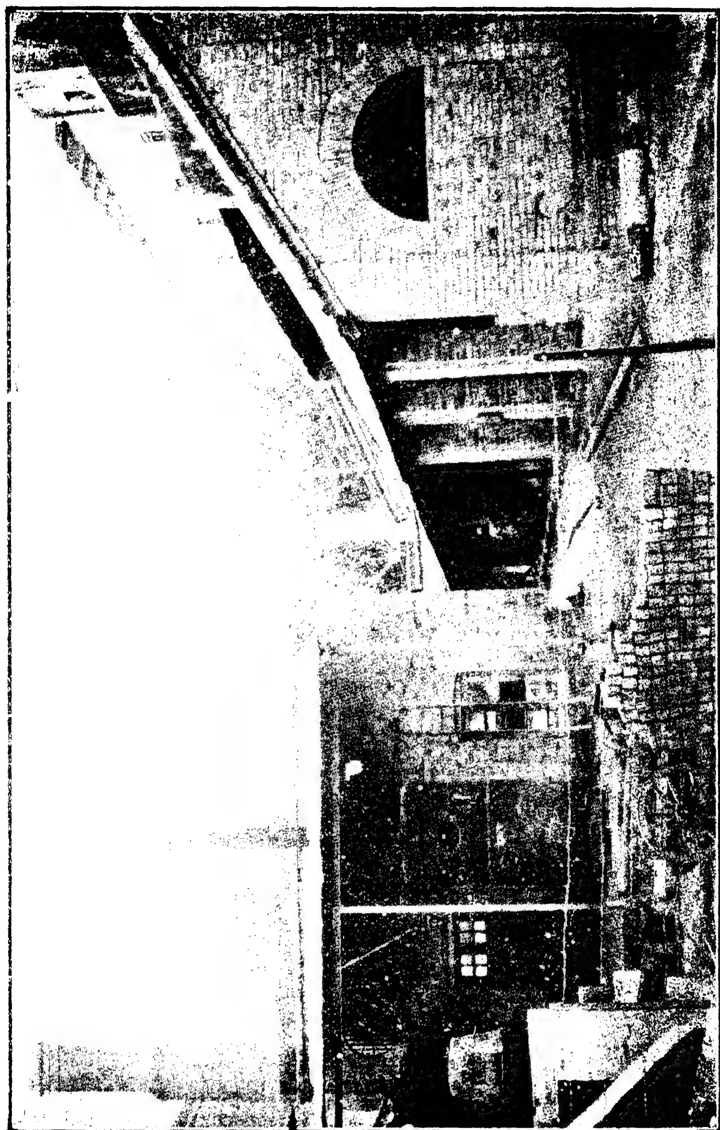
नैपाल और राजा साहब—राजा साहब ने इसी समय एक पत्र नेपाल के सम्बन्ध में प्रकाशित करवाया जिससे यह भी पता चलता है कि नैपाल सरकार को वृटिश सरकार ने हिज मैजिस्टी (*His Magesty*) स्वीकार किया है उस प्रयत्न में राजा साहब का भी हाथ था। आपने इस सम्बन्ध में काफी उद्योग किया है। आपका विचार नैपाल यात्रा करने का है। पर भारत में होकर जाने में कठिनाई है। आपका कहना है कि भारत सरकार नैपाल जाने के लिये मुझे मार्ग नहीं दे सकती। यदि अफगानिस्तान सरकार भारत सरकार से मेरे लिये मार्ग मांगे और वह अस्वीकार करदे तो अफगानिस्तान सरकार का अपमान होगा। इसलिये आप ने नैपाल यात्रा का विचार छोड़ दिया है।

फिर जर्मनी—सितम्बर सन् १९२४ में राजा साहब ने काबुल से जर्मनी के लिये प्रस्थान किया। अमीर काबुल ने राजा

+हलधर ता० २ मई १९२४ ई०

साहब को विदा करते समय दस हज़ार काबुली रुपये भी मार्ग व्यय को दिये और कुछ अपने सिपाही साथ कर दिये।

कांग्रेस के नाम अपील—जर्मनी में कुछ सप्ताह ठहर कर राजा साहब पेरिस पहुंचे। इसी समय बेलगांव में भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का ३९ वां अधिवेशन होने वाला था—उसके विचारार्थ—भारतीय नेताओं के लिये—एक अपील प्रकाशित की जिसमें आपने लिखा कि "यदि कांग्रेस हमारी मुख्य राज सभा है तो स्वराज्य दल दूसरी श्रेणी पर कार्यकर्त्ता है। चाहे कोई एक कांग्रेस सेवक अथवा स्वराज्य दल का कार्यकर्त्ता देश के एक कार्य को बनावे अथवा बिगाड़े परन्तु जन-साधारण के संमुख यह दो संस्थायें ही बुराई भलाई की उत्तर दाता हैं। अस्तु, कोई भी कांग्रेस वादी अथवा स्वराजी, जो इन संस्थाओं में है, यह कह कर नहीं बच सकता कि अमुक कार्य मैंने नहीं किया, वह तो उसने बिगाड़ा था अथवा बिगाड़ा है। जन साधारण तो समस्त संस्था को ही उत्तरदाता ठहरायेंगे इसलिये संस्था का प्रत्येक सदस्य उत्तरदायी होगा। यह प्रत्येक सदस्य का धर्म है कि वह किसी को भी संस्था में मनमानी न करने दे। यदि हमारा प्रतिनिधि अपना धर्म पालन नहीं कर रहा है तो हमें आज ही उससे पूछ ताछ करनी चाहिए ताकि हम सब को सर्वसाधारण के सन्मुख लज्जित न होना पड़े, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, यह सैकड़ों भारतीय—जो आज विदेशों में भारत के लिए हो कष्ट उठा रहे हैं—भारत



लौटेंगे और सर्व साधारण के संमुख अपना दुखड़ा रो रोकर सुनावेंगे और कहेंगे कि उन्हें इतनी पीड़ा कांग्रेस या स्वराज्य-पार्टी की उपेक्षा के कारण हुई है। उस समय आज कल के नेताओं को भी कुछ कहते न बनेगी। सर्वसाधारण के क्रोध का आर पार न रहेगा। इसलिये निवेदन करता हूँ कि आप आज ही विचार पूर्वक उन कष्टों का ध्यान करें जो आज सहस्रों भारतीयों को विदेशों में सहना पड़ते हैं और अपनी सम्पूर्ण शक्ति से कांग्रेस और स्वराज्य दल को भी इस समस्या की ओर आकर्षित करें। इस समय कांग्रेस होने वाली है। हमारे भाई सहज में इस प्रश्न को कांग्रेस के सामने रख सकते हैं। स्वराज्य दल ने विदेशों में भारतीय प्रतिनिधि रखने की आवश्यकता तो स्वीकार कर ली है परन्तु उसने अभी तक विदेशों में अपने प्रतिनिधि नियत नहीं किये हैं। कांग्रेस को चाहिये कि वह शीघ्र से शीघ्र अपने प्रतिनिधि नियत करे जो विदेशों में अपना प्रचार करें और साथ ही साथ दूसरे देशों में रहने वाले भारतीयों की समय समय पर सहायता करें। इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। हमारे प्रिय भारतीय यह न समझें कि मैं अपने निजी सुख के लिये कांग्रेस से यह अपील कर रहा हूँ। इस में सन्देह नहीं कि कभी कभी मुझे भी अपना दुख चित्त में खलबली उत्पन्न कर देता है परन्तु मैं 'अफगानिस्तान का नागरिक' बन गया हूँ इससे अफगानी राजदूत से सहायता मिल जाती है। मेरा हृदय तो उन भाइयों के कष्टों को देख कर भर आता है जो भारत के लिये

विदेशों में पड़े हैं और अब न बृटिश प्रजा रहे और न अन्य देश उन्हें पास पोर्ट देते हैं। 'वह घर के न घाट के' की भांति मारे मारे फिरते हैं। यदि वह कहीं निरपराध फँस गये तो उनको सहायता करने वाला भी कोई नहीं होता। यदि कांग्रेस के प्रतिनिधि बड़ी बड़ी राजधानियों में नियत हो जावें तो वह उन की देख भाल कर सकेंगे। इस देख भाल के बदले वह उनसे प्रचार कार्य भी करा सकेंगे। यह लोग अब भी प्रचार करते हैं पर उस दशा में नियम बद्ध प्रचार हो सकेगा।" कांग्रेस ने राजा साहब की इस अपील पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया।

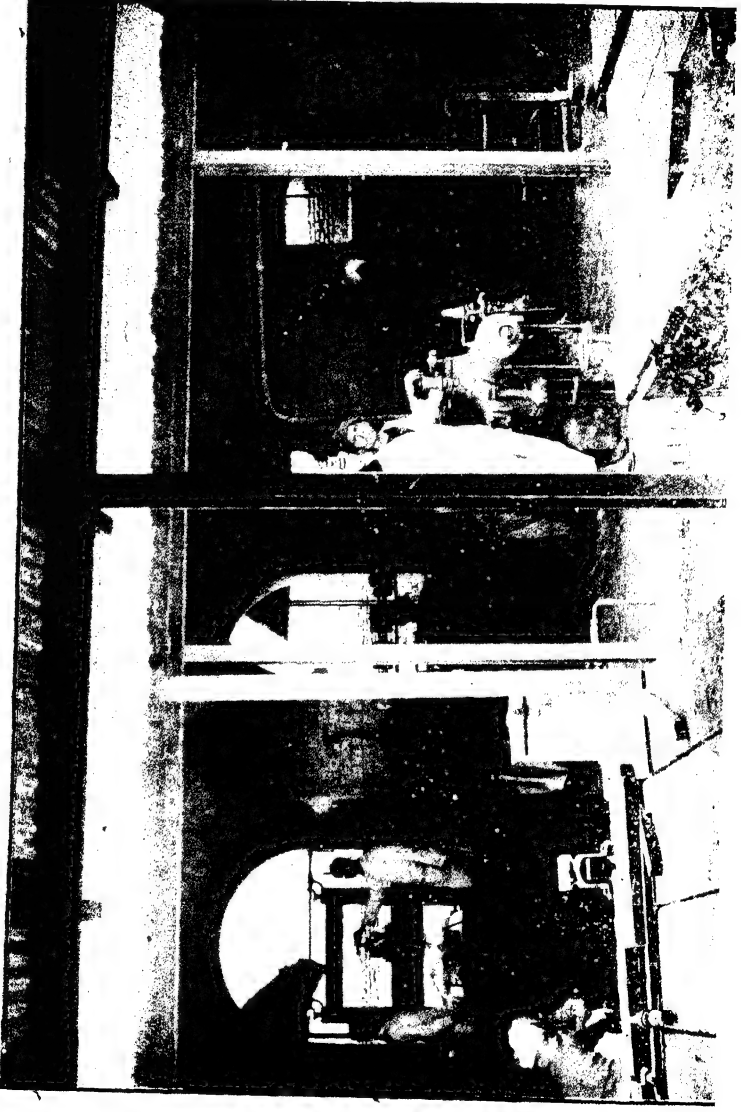
विदेशों में प्रचार--इसी समय राजा साहब ने एक पत्र विदेशों में प्रचार के संबंध में प्रकाशित करवाया जिसमें भारतीयों से अनुरोध किया कि वह विदेशों में अपने प्रचारक भेजे। आप लिखते हैं कि "मेरे अपने विचार में तो, जो भारतवर्ष के लिये सब से अधिक आवश्यक है, भारतवर्ष का दूसरे देशों में प्रचार। आप कहेंगे कि खूब दूर की सूझी। सम्भव है कि मेरी सम्मति इस विषय में किंचित पक्षपात युक्त भी हो। जैसे वैद्य सदा देह को आरोग्य रखने को ही जीवन का उद्देश्य समझता है अथवा जैसे पहलवान डण्ड पेलने व कुश्ती करने का प्रयत्न आवश्यक बताता है या योगी योग धारण ही को सत्य मार्ग होने का विश्वास दिलाता हैं वैसे ही संभव है कि मेरे जैसा यात्री स्वभावतः दूसरे देशों के सम्बन्ध को थोड़ा या अधिक आवश्यक समझता हो। परन्तु जैसे औषध, डण्ड बैठक

अथवा आत्मिक साधन सर्वथा व्यर्थ नहीं ठीक वैसे ही यह सभी को मानना पड़ेगा कि यात्रा वा दूसरे देशों से नाता हमारे जीवन, विशेष कर देशीय जीवन के लिये, थोड़ा अधिक आवश्यक है, इसमें सन्देह नहीं। मैं दूसरे देशों से जितना ही परिचित होता हूँ, उतना ही मैं इसे आवश्यक समझता हूँ कि दूसरे देशों के संबन्ध में भारतवर्ष का ज्ञान बढ़े, और साथ ही दूसरे देश भी भारत को भारत की आंखों से देखना सीखें। आज दुर्भाग्यवश बहुधा दूसरे देश भारत को अंग्रेज़ों की आंखों से देखते हैं क्योंकि अंग्रेजी प्रचार सब स्थानों में प्रचलित हैं और भारतीय प्रचार का अभाव है। यदि मैं अपने भारतीय भाइयों को दूसरे देशों में भारतीय प्रचार का महत्व समझा सकूंगा तो मैं इसे मनुष्य जाति की एक सेवा समझूंगा।

मैं कहता हूँ कि अंग्रेज जो विशाल भारतीय जाति पर राज्य कर सकते हैं यह किन विचारों का फल है? इन विचारों में मुख्य यह विश्वास है, जो साधारण अंग्रेजी सैनिक में होता है, कि अंग्रेज जाति यूरोपीय, सफेद और उच्च है और हिन्दुस्तानी काले, मूर्ख और अयोग्य हैं। इस विचार को अंग्रेजी लेखक पुष्ट करते हैं और अंग्रेजी लेखकों के विचार को यूरोप अमेरिका के दूसरे लेखक बल देते रहते हैं। इसलिये यदि हम यूरोप और अमेरिका में अपनी विचार शक्ति से इस विषय में विचारों को बदल दें तो अंग्रेजी विचारों में भी अवश्य परिवर्तन होगा और इसका प्रभाव अंग्रेजी सेना पर भी पड़ेगा। कहा

जाता है कि उत्तम यह होगा कि सीधे अंग्रेजी सिपाही अथवा अंग्रेजी प्रजा को समझाया जाय। नहीं यह कठिन है। इनके हृदय में स्वार्थ जमा हुआ है। यह स्वार्थ इनको उच्च विचार नहीं सुनने देगा। विशेष कर जब कोई हिन्दुस्तानी इनसे कुछ कहेगा तो यह उसको नीच समझ कर उसकी बातों से लाभ न उठावेंगे। पर हां, दूसरे फिरंगी जिनका एशिया अफरीका में कम स्वार्थ है, मनुष्य जाति सम्बन्धी उच्च विचारों को सुन सकते हैं और उन के मन में भारतवर्ष के लिये भी आदर उत्पन्न किया जा सकता है। जब वे लोग अपने उच्च विचार प्रकट करेंगे तो उनका अंग्रेजों पर भी शीघ्र प्रभाव पड़ेगा। क्या यह बहुत हेर फेर की बात है? क्या इसका फल बहुत देर में निकलेगा? हमें शीघ्र ही भारतवर्ष को स्वतन्त्र करना है। मैं यह नहीं कहता कि हम को शीघ्रता से स्वतन्त्रता के लिये कार्य न करना चाहिये। स्वतन्त्रता के लिये जो कुछ किया जा सकता है, अवश्य करना चाहिये, पर साथ ही ऐसा प्रचार भी करते रहना चाहिये कि न्याय के पक्ष का बल बढ़े और अंग्रेजी धूर्तता निर्बल हो; साथ ही समस्त मनुष्य जाति को इस के लिये तैयार करना चाहिये कि सब विदेशी भारतवर्ष की स्वतन्त्रता को अच्छी दृष्टि से देखें।

मेरा कहना है कि यह प्रचार केवल राजनीतिक ही नहीं होना चाहिये, बल्कि वैज्ञानिक सामाजिक और विशेष कर धार्मिक प्रचार की आवश्यकता है। हिन्दुस्तानी वैज्ञानिक



प्रे० म० वि० मिकेनीकल इंजीरिंग क्लास ।

बाहर आवें, जो कुछ दूसरे देशों में है वह सीखें और अपनी वैज्ञानिक योग्यता से यह सिद्ध करें कि भारतीय भी फिरंगियों की भांति विद्वान होते हैं। परन्तु भारतीय धर्म शास्त्र यूरोप अमेरिका में पहले से प्रसिद्ध हैं इसलिये धर्म प्रचार द्वारा सुगमता से भारतीय प्रचार हो सकता है। प्रमाण के लिये निवेदन है कि मैं आज कल केवल प्रेम धर्म और प्रेम मण्डली के विषय में व्याख्यान देता हूँ। मैं जन्म से हिन्दुस्तानी हूं इससे जो लोग मेरे विचारों से संतुष्ट होते हैं और उन्हें स्वीकार करते हैं वे साथ ही भारत की वर्तमान दशा की ओर भी आकर्षित होते हैं। इसी प्रकार और लोग भी हिन्दुस्तान के इकतीस अथवा तैतीस करोड़ मनुष्यों की सेवा कर सकते हैं।"*

राजा साहबको जहर—फ्रांस से अमेरिका और जापान जाने की आज्ञा लेकर ता० २२ दिस० सन् १९२४ को राजा साहब रवाना हुए। आप पहिले अमेरिका पहुंचे। वहां '*The New Religion*' नामक पुस्तक प्रकाशित की। आपने नीग्रोजाति की एक सभा में भाषण देते हुए यह सिद्ध किया कि 'भारत और नीग्रो जाति के स्वार्थ एक समान है। इसलिये उन स्वार्थों के विरुद्ध आवाज उठाने अथवा षड्यन्त्र रचने वाले भारत और नीग्रो जाति के शत्रु हैं।' इस भाषण से बहुत से लोग चिढ़ गये। उनमें से किसी ने ता० १९ जनवरी सन् १९२५ की रात्रि को

* 'आज' (काशी)

खाने के साथ राजा साहब को विष दे दिया। आपको रात्रिभर बड़ी बेचैनी रही परन्तु डाक्टरों की सहायता से जान बच गयी। इस सम्बन्ध में राजा साहब ने स्पष्ट लिखा है कि "धर्म के कार्य में यदि मेरी जान भी चली जावे तो मुझे चिन्ता नहीं। पर चिन्ता है तो केवल इतनी कि किसी भी दशा में मेरे मित्र मेरे कार्य को बन्द न होने दें।"

चीनका फिर भ्रमण—मार्च सन् १९२५ में राजा साहब अमेरिका से चीन आ पहुँचे। यहां आपने भ्रमण कर चीनियों को समझाया कि भारत और चीनकी दशा एक समान है। यदि चीन और भारत मिलकर सम्मलित उद्योग करें तो बहुत सफलता मिल सकती है। राजा साहब अभी चीन में ही हैं।

भारत और नैपाल—अमेरिका से चीन जाते समय जहाज से एक पत्र भारत भेजा जिसमें भारतियों से अनुरोध किया गया कि वह नैपाल और तिब्बत से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करें। आप लिखते हैं कि "हम समझते हैं कि भारत की स्वाधीनता के लिये और प्राप्त स्वाधीनता की रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि विदेशों से, खासकर अपने पड़ोसी राष्ट्रों से, अच्छे सम्बन्ध पैदा किये जायं. भारत के इर्द गिर्द सच्चे मित्र बनाये जायं। मैं इसी विचार को लेकर सन् १९१४ ई० से अबतक १०-११ वर्षों से जर्मनी, आस्ट्रिया, टर्की, ईरान, अफगानिस्तान, रूस, फ्रांस, इटली, स्विटजरलैण्ड, अमेरिका, मैक्सिको जापान और चीन वगैरह

देशों में घूमता रहा हूं, और भारत की सभ्यता तथा प्रेम का प्रचार करता हूं। मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि इन देशों में भारत के बहुत से सच्चे हितैषी मौजूद हैं। विशेष कर अफ़ग़ानिस्तान, रूस और जापान में हार्दिक मित्रोंकी कमी नहीं है। यह लोग व्यक्तिगत रूप से भारत के लिये कष्ट सहन करने को तैयार हैं। जो लोग राजनीति का ज्ञान रखते हैं वह भी जानते हैं कि समय आने पर अफ़ग़ानिस्तान, रूस, तुर्की, चीन और जापानकी सरकारों का भी इसमें हित होगा कि हिन्दुस्थान को स्वाधीनता प्राप्त करने में सहायता दें। भारत की स्वाधीनता से उनकी शक्ति बढ़ती है। इनमें कोई राष्ट्र भी यह सहन नहीं करेगा कि किसी दूसरे राष्ट्र का भारत पर कब्जा हो जाय, यह प्रसन्नता की बात हैं। पर भारत के निकट ही दो देश ऐसे हैं जहां स्वाधीनताका यथेष्ट प्रचार नहीं हुआ है। यह देश नेपाल और तिब्बत हैं। इनमें भारतीय सभ्यता का ही प्रकाश है और सम्बन्ध भी कहीं निकट है। उदयपुर राज घराने के एक राजकुमार ने नेपाल में जाकर राजवंश स्थापित किया था। तिब्बत में भी एक भारतीय नृपति ने जाकर हिन्दी लिपि का प्रचार किया था इसलिये तिब्बी लिपि के अक्षर हमारी देवनागरी लिपि के अक्षरों से मिलते हैं। अनेक भारत वासियों के पूवज तिब्बी और नैपाली थे जैसा कि बंगाल में हमारे भाइयों के चेहरों से मंगोलियन सौन्दर्य (?) प्रकट है।

यदि कोई सम्बन्ध न हो तो भी वे हमारे पड़ोसी हैं। हम उनके हैं, वे हमारे हैं। हमारा उनका लाभ समान है। नुकसान समान है। अतः हर तरह उनसे मित्रता रखना हमारा कर्त्तव्य है। इसी कर्त्तव्य को पूरा करने के लिये कई वर्ष से मैं नैपाल जाने का प्रयत्न कर रहा हूं। दो बार अंग्रेजों ने जोर के साथ रोका, एक बार उनकी चाल चल गयी। पर मैंने अपना इरादा न कभी बदला था, न बदलूंगा, हाल में ही अमेरिका और केलीफोर्निया के भारतीयों ने मुझे करीब ३० हजार रुपये दिये हैं। सात वीर भारतवासी भी मेरे साथ जाने को तैयार हुए हैं। अब हम वहां से जापान और चीन के मार्ग से तिब्बत और नैपाल जा रहे हैं। जो कुछ हम से हो सकता है करते हैं, पर यह काम सब भारतवासियों का है।"+



+ 'तेज' (दिल्ली)

चौथा अध्याय



रा जा साहब ने इस समय अपने जीवन का उद्देश 'मानव जाति की सेवा करना' निश्चय कर लिया है। आप अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये समस्त संसार में 'प्रेम' का प्रचार करना चाहते हैं। आपका दृढ़ विश्वास है कि "प्रेम द्वारा ही मानव जाति का उद्धार हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह हिन्दू हो अथवा मुसलमान, ईसाई हो अथवा अथवा यहूदी, पारसी हो अथवा नीग्रो, हवशी हो अथवा चीनी, प्रेम धर्म स्वीकार कर लेना चाहिये क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने धर्म को मानता हुआ भी प्रेम धर्म का अनुयायी हो सकता है। प्रत्येक धर्म एक दूसरे से प्रेम करने का आदेश देता है फिर क्या कारण है कि एक मुसलमान और एक हिन्दू अपने २ धर्म में पूर्ण विश्वास रखते हुए भी-प्रेम धर्म के झंडे के नीचे एकत्रित नहीं हो सकते ? आजकल जो वैमनस्य अनेक समुदायों में फैला हुआ है उसका कारण भी यही है कि 'प्रेम धर्म' का प्रचार न होना।"

राजा साहब ने इसी कार्य के लिये यूरोप में एक *Happyness Society*' (सुख संस्थापक दल) की स्थापना की है।

इस सोसाइटी की शाखायें भिन्न २ देशों में स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। अंग्रेजी, जर्मनी, फ्रांसीसी आदि कई भाषाओं में '*The Religion of love*' (प्रेम धर्म) नामक पुस्तक प्रकाशित की है इस पुस्तक में प्रेम धर्म के ६ उपदेश लिखे गये हैं जिनमें मुख्य ४ उपदेशों का अविकल अनुवाद यहां दिया जाता है।

[१] *स्वास्थ*—"प्रिय पाठक ? तुम ईश्वर का ध्यान करो अथवा संसार का, आत्मा सम्बन्धी बातों पर विचार करो अथवा शरीर सम्बन्धी, भविष्य की चिन्ता करो अथवा भूतकाल की, यह हमेशा याद रक्खो कि तुम्हारे समस्त विचार, चिन्तवन की शक्ति और तुम्हारी भी, सब तुम्हारे दिमाग़ पर निर्भर है और तुम्हारा दिमाग़ तुम्हारे स्वास्थ्य के अनुसार काम करता है। अगर तुम स्वस्थ्य नहीं हो अथवा स्वस्थ होने की कोशिश नहीं करते तो तुम अब या भविष्य में कुछ उपयोगी कार्य नहीं कर सकते। अतः यदि तुम अपनी उन्नति चाहते हो अथवा धर्म व देश सेवा करना चाहते हो तो सब से पहिले अपना स्वास्थ्य ठीक रक्खो और यदि तुम अपना स्वास्थ्य पहिले ही नष्ट कर चुके हो तो अब उसे पुनः सुधारने का प्रयत्न करो।

परन्तु स्वास्थ्य का अभिप्राय यह न समझना चाहिये कि तुम अपनी स्त्री से भोग विलास कर सको। यदि तुम्हारा दिल सदैव बुरे विचारों में फंसा रहे तो भी उसे तंदुरुस्ती नहीं कह

सकते। वही मनुष्य स्वस्थ्य है जो अपने शरीर की तंदुरुस्ती कायम रखते हुए अपने दिल और दिमाग पर इतना काबू रख सके कि अपने आप को बुराइयों से बचाते हुए सदैव भले कार्यों की ओर अग्रसर होता रहे। यदि तुम स्वस्थ रहना चाहते हो तो मन पर काबू सीखो और स्वास्थ रक्षा के अच्छे से अच्छे नियमों का पालन करो। अनुचित आत्मवाद, काम, क्रोध, लोभ असत्य भाषण, असत्य प्रेम, द्वेष, घृणा, धन और पद की मनोवासना को बीमारियां समझो और उनका उचित इलाज करो, अपने बदन को साफ रक्खो और उचित समय पर खाओ, पीओ, सोओ, जागो और काम करो। अपने मकान या मुहल्ले के पास कभी मैला इकट्ठा न होने दो। तुम्हें ऐसा कोई कार्य न करना चाहिये जिससे तुम्हारा अथवा तुम्हारे पड़ोसी का स्वास्थ खराब हो।

बीमार मनुष्यों को भी निराश न होना चाहिये और यह न समझना चाहिये कि केवल स्वस्थ मनुष्य ही धर्मात्मा हो सकते हैं। नहीं, धर्म तो तुम्हारी मन की दशा पर निर्भर है। यदि तुम स्वस्थ रहने का प्रयत्न करते हुए अपनी धर्म की पूरी सेवा करते हो तो तुम्हें सेवा का उत्तम पारितोषिक मिलेगा, तुम्हें वही पारितोषिक मिलेगा जो कोई स्वस्थ मनुष्य धर्म की सेवा कर प्राप्त कर सकता है। सेवा का पुरस्कार दान की रकम के अनुसार से नहीं मिलता। यदि एक धनी मनुष्य एक हजार रुपया दान करदे और कोई ऐसा निर्धन व्यक्ति,

जिसके पास खाने को एक पैसा भी न हो, एक पैसा दान करे तो पुरुष्कार दोनों को बराबर मिलेगा। सेवा का पुरुष्कार मन की हालत के अनुसार मिलता है। जैसे मन से कोई काम करता है, वैसे ही मन से वह पुरुष्कार पाता है। क्योंकि,—

जाकी रही भावना जैसी।

प्रभु मूरत देखी तिन तैसी॥"

[२] *शिक्षा*—"अपना स्वास्थ्य ठीक रक्खो और अपने आपको शिक्षित करो। विना शिक्षा के धर्म सेवा और देश सेवा करना कठिन हो सकता है। इस लिये अब से उसे बेहतर बनाने का प्रयत्न करो। शिक्षा की अथवा धर्म सेवा की कोई सीमा निर्धारित नहीं है। जब तक इन्द्रियाँ काम करती हैं, शिक्षा प्राप्त होती रहती है और धर्मकी सेवा भी की जा सकती हैं। यदि स्वास्थ की दशा में दिमाग काम करता है तो शिक्षा के अनुसार ही कामयाबी मिल सकती है। दिमाग का वास्तविक भोजन शिक्षा है और शिक्षा ही औषधि है, शिक्षा ही दिमाग को बनाती है। बिना शिक्षा के दिमाग़ को ढोल कहा जायगा। धर्म तथा संसार की उन्नति-मानव जाति की उन्नति पर निर्भर है और मानव जाति की उन्नति का हिसाब शिक्षा के अनुसार लगाया जाता है। शिक्षा जितनी अधिक प्राप्त करोगे, उन्नति उतनी ही अधिक होगी। जिस कदर अज्ञान का अंधेरा होगा उसी कदर अवनति होगी, इस लिये बिना द्वेष भाव के भिन्न भिन्न समस्त विज्ञानों को जानने के लिये तुम्हें मनुष्य कर्त्तव्य का

विचार करना चाहिये। तुम्हें चाहिये कि कभी भी मानवी जनता को पुरानी और नई से नई शिक्षा से लाभ उठाने से न रोको। यदि तुम स्वस्थ हो अथवा स्वस्थ होने का प्रयत्न कर रहे हो और अधिकाधिक शिक्षा प्राप्त करने में संलग्न हो तो निस्सन्देह मंजिल के निकट पहुंच रहे हो। यदि तुम पहिले से धार्मिक नहीं हो और तुम धर्म की सेवा भी नहीं कर रहे तो भी तुम्हें विश्वास रखना चाहिये कि जैसी हो शिक्षा काफी हो जावेगी तुम उचित मार्ग पर आजावोगे और ब्रह्मांड की सच्ची सेवा करने योग्य हो जाओगे।

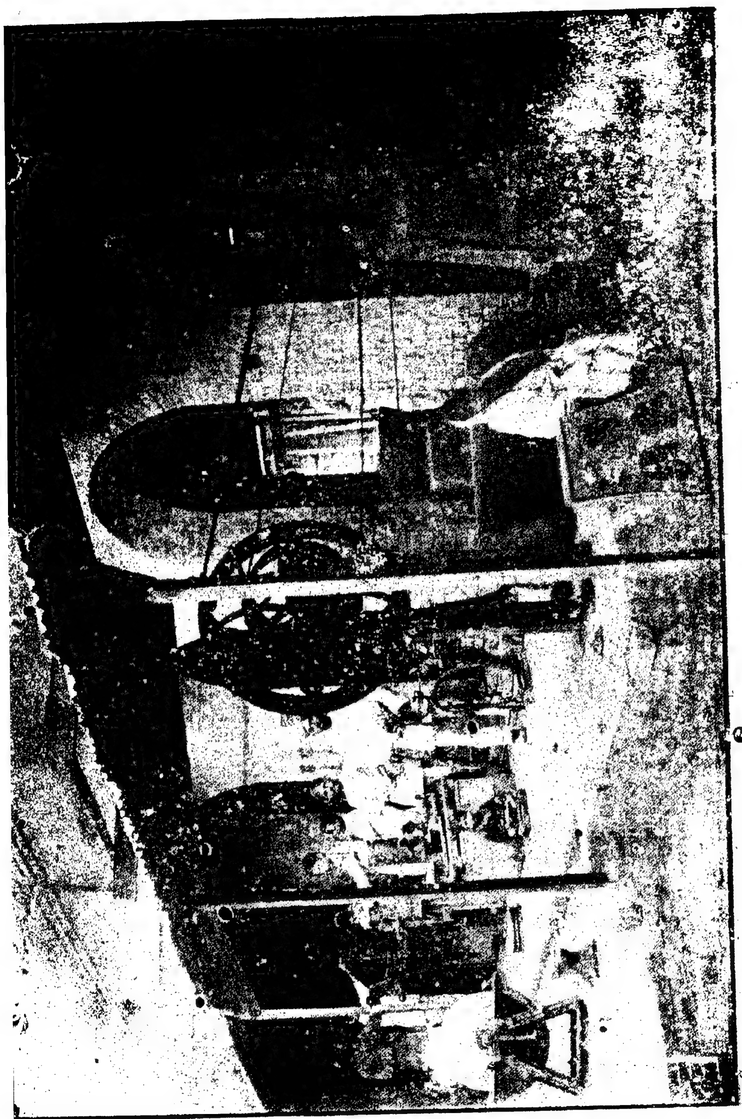
ऐ अज्ञानी पुरुषो! तुमको भी निराश नहीं होना चाहिये। तुम्हें यह ख्याल नहीं करना चाहिये कि अशिक्षित आदमी ब्रह्मांड की सेवा नहीं कर सकता और पूर्ण उन्नति नहीं कर सकता और तुम्हारा जीवन निरर्थक है। नहीं, तुम उस पुरुष्कार के अधिकारी हो सकते हो जो अधिक से अधिक विद्वान ज्ञानी मनुष्य प्राप्त कर सकता है।"

[३] *ज्ञान*—"स्वास्थ और शिक्षा का उद्देश्य सच्चा ज्ञान है। जब तक सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं होता, शिक्षा और स्वास्थ को दूषित समझना चाहिये। जब स्वास्थ ठीक होता है और शिक्षा विस्तृत होती है, या कुछ विशेष शिक्षा और अनुभव प्राप्त होता है तो ज्ञान प्राप्त हो जाता है। धर्म जो बड़े काम करता है, उन में से एक यह है कि इससे मनुष्य सहज ही सच्चा ज्ञान

प्राप्त करने लगता है। समयानुसार धर्म हमें यह बतलाता है कि कोई मनुष्य अपने हानि लाभ का विचार अलग अलग न करे, मनुष्य को जानना चाहिये कि उसकी असली हानि या लाभ उसी बात में है जिसमें समस्त मानव जाति का नफा नुकसान हो क्योंकि मनुष्य तमाम सृष्टि में आगे बढ़ा हुआ है—पत्थर मिट्टी, घास, पेड़, कीड़े और जमीन पर चलने वालों में तथा पशु और पक्षियों में मनुष्य श्रेष्ठ उन्नत है, मानो मनुष्य इस संसार की भौतिक सृष्टि का मस्तिष्क है—इसलिये सब के फायदे में मनुष्य का लाभ है और सब की उन्नति में मनुष्य की उन्नति है।

मनुष्य उन्नति की ओर बढ़ कर अपने आप को तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को सुख देता है। जब कोई मनुष्य अकेले अपने लाभ का विचार करता है, वह स्वयं अपनी उन्नति में रुकावट डालता है तथा पूर्ण सुख की प्राप्ति में विलम्ब करता है। संक्षेप में सच्चा धर्म यह है कि मनुष्य इस बात को जान ले और इसका पूर्णरूप से विश्वास करने लग जाय कि एक एक व्यक्ति के हानि लाभ का अलग अलग विचार करना पापमय है। सब से प्रथम कर्त्तव्य भी यही है कि वह अपनी हानि लाभ भी उस बात में समझे जिसमें सबकी हानि लाभ हो।

पाठको ! यदि तुम्हें अभी तक यह ठीक ज्ञान नहीं हुआ है तो इसके लिये विद्या प्राप्त करो, पढ़ो लिखो, अच्छी संगति में



प्र० म० वि० मिकेनिक-शाप।

रहो, दुनियां को देखो अनुभव प्राप्त करो और अपने स्वास्थ को सुधारते हुये अपने प्रयत्न जारी रखो जब तक कि यह सच्चा ज्ञान प्राप्त हो और यदि स्वास्थ शिक्षा, अनुभव या धर्म से यह सच्ची समझ पहले से ही हो गयी हो अथवा भविष्य में हो जाय तो यह जान लेना कि स्वास्थ और शिक्षा में उन्नति होने से सबका लाभ है, अपने स्वास्थ को रखते हुए, अधिकाधिक शिक्षा प्राप्त करते हुए धर्म की सेवा में लगे रहो। सुस्त मत बैठो, रुको मत, कार्य और उन्नति का ही नाम जीवन है।"

[४] सेवा—"ज़रा सोचिये और विचार कीजिये, समस्त धर्म तुम्हें क्या सिखलाते हैं ? संसार के आरम्भ से तुम्हें क्या सिखाया जा रहा है ? क्या तुम्हें यह नहीं दिखलाई देता कि एक मनुष्य जो कुछ करता है उसे उसी के अनुसार पारितोषिक मिलता है। अच्छे मनुष्य को अच्छा और बुरे मनुष्य को बुरा परिणाम मिलता है। "जो जैसी करनी करे सो तैसो फल पाय।"

"संसार के प्रायः सभी धर्मों ने स्पष्ट आदेश दिया है कि ऐसे ऐसे कार्य करने से लाभ होगा और ऐसे ऐसे कार्य करने से हानि। तुम्हें यह सिखाया गया है कि यदि तुम गरीबों पर दया करोगे तो प्रसन्नता प्राप्त होगी और यदि तुम अपनी अपनी कहोगे, अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को दुःख दोगे, अनुचित क्रोध करोगे, असत्य भाषण करोगे, धोखा दोगे और दूसरों का

माल हड़प जाओगे तो तुम्हें कठोर दण्ड मिलेगा। सारांश यह है कि दूसरों का ध्यान रखने से और दूसरों की सेवा तथा परोपकार करने से पुरुष्कार मिलता है। यदि तुम जनता की सामाजिक अथवा राजनीतिक किसी प्रकार की सेवा करते हो तो यह भी धर्म सेवा कहलाती है।

स्वास्थ्य को ठीक रखना, समुचित शिक्षा प्राप्त करना और सच्चा ज्ञान प्राप्त करना भी इसीलिये आवश्यक है कि तुम इन अस्त्रों से सुसज्जित हो कर संसार के दुख और अज्ञान के विरुद्ध युद्ध करो। मानव जाति की प्रसन्नता और शिक्षा को बढ़ा कर तुम ब्रह्माण्ड की सच्ची उन्नति कर सकते हो और इस प्रकार की उन्नति करते हुए तुम अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर सकते हो। यदि तुम पुरुष्कार चाहते हो, यदि तुम्हें धर्म की सेवा करने की इच्छा है तो यह अत्यावश्यक है कि दूसरों की सेवा करो और दूसरों के लिये ही जिन्दा रहो। ऐसा करने से पुरुष्कार स्वयं मिल जायगा, धर्म सेवा यही है. अन्त में पूर्ण प्रसन्नता मिलने में क्या संदेह रह सकेगा ?"

पाठक इन उपदेशों से ही समझ गये होंगे कि 'प्रेम धर्म' हिन्दुत्व, इस्लाम, ईसाई-मत, बौद्ध मत, जैनमत, सिक्खमत, आदि की भांति कोई नयी बला नहीं है वरन् 'प्रेम-धर्म' सब मतों का सार है। जो जो उपदेश राजा साहब ने 'प्रेम धर्म' में लिखे हैं वह प्रायः सभी धर्मों अथवा मतों में पाये जाते हैं। पर अधि-

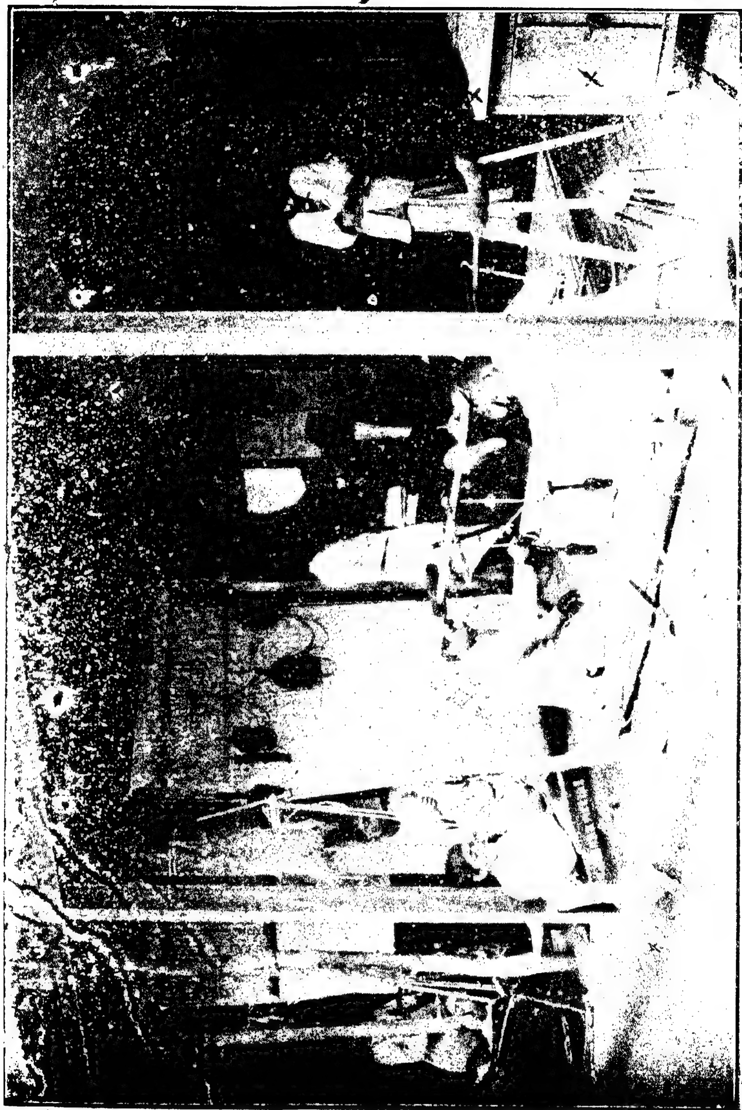
कांश मनुष्य इन बातों को भूल कर व्यर्थ के झगड़ों में फँस जाते हैं और ऊपरी बातों को ही धर्म का प्रधान अङ्ग मानने लगते हैं। इसलिये राजा साहब का उद्योग है कि मनुष्य व्यर्थ के ढोंग को छोड़ कर इन खास तत्वों को समझे। बस यही प्रेम धर्म है।

राजा साहब की सम्पत्ति—राजा साहब की रियासत अलीगढ़, मथुरा और बुलन्दशहर जिले में है। आपने अपनी आधी रियासत तो मई सन् १९०९ में प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन को दान करदी थी। आधी रियासत राजा साहब के यूरोप चले जाने पर सन् १९१६ में कोर्ट आफ वार्ड्स के आधीन करली गयी। राजा साहब के परिवार को मासिक पेन्शन मिलने लगी। सन् १९२४ में संयुक्तप्रान्तीय सरकार ने एक कानून बनाया जिसके अनुसार राजा साहब की रियासत जब्त करली गयी। जब राजा साहब के पुत्र श्री प्रेमप्रताप बालिग हो जावेंगे तब वह रियासत उन्हें देदी जावेगी। अब रियासत पर राजा साहब का कोई अधिकार नहीं रहा है। वह यदि भारत आ भी जावें तब भी रियासत नहीं मिल सकती।

परिवार बन्धु—राजा साहब के बड़े भाई मुरसान रियासत के उत्तराधिकारी कुं० बल्देवसिंह आजकल बल्देवगढ़ में रहते हैं। राजा साहब की दो मातायें थीं। आप अपनी छोटी माता को

बहुत प्य र करते थे । सन् १६२२ में आपने लिखा कि "पूज्य माता जी ! मुझे आपके दर्शन करने की अभिलाषा है। पर दुःख है कि आ नहीं सकता। यदि तुम चाहो तो मेरे साथ जापान या अमेरिका में रह सकती हो । माँ, क्षमा करना, मैं आपकी सेवा न कर सका, पर मुझे विश्वास है कि–यदि हम लोगों में प्रेम है—तो इस जीवन में न सही, दूसरे जीवन में फिर मिलेंगे।" माता जी ने अमेरिका या जापान जाना अस्वीकार कर दिया। जिस समय यह यह पत्र माता जी के पास आया था उस समय वह बीमार थीं, बृन्दावन में स्वास्थ लाभ न होते देख आप किसी पहाड़ी पर चली गयीं। एक दिन चित्त बहुत व्याकुल हुआ और बृन्दावन के लिये प्रस्थान किया पर मार्ग में ही आपके प्राण पखेरू उड़ गये। बृन्दावनवासी भी अन्तिम समय आपके दर्शन न कर सके। बड़ी माता जी का सन् १६२४ में स्वर्गवास हुआ। आपकी रानी साहिबा प्रायः देहरादून में रहा करती थीं और कभी कभी अपने पितृ गृह झींद में। सन् १६२५ में वह मथुरा में रहने लगी थीं पर उसी वर्ष अक्टूबर मास में आप का भी स्वर्गवास हो गया। आपकी पुत्री भक्ति देवी और पुत्र प्रेम प्रताप देहरादून के राजकुमार कालिज में शिक्षाध्ययन करते हैं और उनकी संरक्षता के लिये एक यूरोपियन गार्जियन नियत है।

साम्राज्य का शत्रु कहलाने का कारण—राजा साहब ने विदेशों में जा कर जो जो कार्य किये उनसे भारत सरकार असं-



प्रे० म० वि० दरी और कालीन की श्रेणी ।

तुष्ट है। उसका विचार है कि राजा साहब ने गत यूरोपीय महा समर में हमारे शत्रुओं को सहायता दी थी इसलिये वह साम्राज्य के शत्रु हैं। सरकार सदा ही उन्हें इसी नाम से स्मर्ण करती है।

प्रेम महाविद्यालय की वर्तमान परिस्थिति—राजा साहब द्वारा संस्थापित प्रेम महाविद्यालय अब भी चल रहा है। उस का प्रबंध ४१ सदस्यों की एक 'जनरल कौंसिल' द्वारा होता है जिसके पदाधिकारियों का निर्वाचन प्रति तीसरे वर्ष होता है। जनरल कौंसिल द्वारा निर्वाचित एक 'प्रबन्ध कारिणी समिति' भी है जिसमें १५ सदस्य हैं। जनरल कौंसिल की बैठक वर्ष में एक बार और प्रबन्ध-कारिणी समिति की बैठक प्रति मास होती है। आज कल बा०नारायण दास जी अग्रवाल बी० ए०, मेम्बर भारतीय असेम्बली सभापति तथा बा० कन्हैयालाल एम० ए० एल० एल० बी० मन्त्री और श्री आनन्द भिक्षु जी सरस्वती आनरेरी जनरल मैनेजर हैं। प्रेम महाविद्यालय का सञ्चालन रियासत की आय से होता है। इस में हिन्दी और अंग्रेजी, वस्त्र कला, चीनी मिट्टी का काम, इन्जीनियरिङ्ग, काठ का काम, गलीचा बुनाई (*Carpet Weaving*), लोह का कार्य (*Smithy*) कामर्स, शार्टहैंड आदि की शिक्षा दी जाती है। विद्यालय और वर्कशाप पृथक पृथक हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को एक दस्तकारी का विषय

लेना आवश्यक है। अर्थ शास्त्र और नागरिकता (*Economics and Civics*) की भी शिक्षा दी जाने लगी है। स्टाफ के मनोरञ्जन के लिये एक 'प्रेम क्लब' है। विद्यार्थियों की अध्यात्मिक उन्नति के लिये 'बालडिबेटिंग क्लब' है इसमें प्रति सप्ताह वाद-विवाद होता है। छात्रों के वास के लिये एक बोर्डिङ्ग हाउस भी है। प्रेस और 'प्रेम' का कार्यालय भी यहीं है। विद्यालय-भवन के सामने जमुना जी के तट पर एक मनोहर फूल-वाटिका बनाई गयी है। प्रति वर्ष कुछ न कुछ दान भी विद्यालय को मिला करता है। बँगाल, बिहार, गुजरात, पञ्जाब आदि कई प्रान्तों के छात्र विद्याध्ययन कर रहे हैं। यों तो विद्यालय के स्टाफ में सभी सुयोग्य कार्यकर्त्ता हैं पर दो व्यक्तियों का नाम विशेष उल्लेखनीय है। एक तो प्रिंसिपल ई० डी० गिडवानी। आप समस्त भारत में सुप्रसिद्ध हैं। गत कई वर्षों से गुजरात विद्यापीठ (राष्ट्रीय यूनीवर्सिटी) के प्रिंसिपल-पद पर कार्य कर रहे थे पर अब म० गांधी की अनुमति से आपने विद्यालय का कार्य भार संभालना स्वीकार कर लिया है। आगामी ८ जुलाई सन् १९२६ से अपना चार्ज लेलेंगे। दूसरे महाशय शिवशरणसिंह फाटक वाला वायस प्रिंसिपल, आप प्रेम महाविद्यालय के भूतपूर्व हैडमास्टर श्री अयोध्याप्रसाद फाटक वाला के ज्येष्ठ पुत्र हैं। पहले प्रेम महा विद्यालय में ही आपने शिक्षाध्ययन किया। फिर अमेरिका इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करने के लिये गये। वहां से लौटने पर आप विद्यालय के वायस-प्रिंसिपल नियुक्त हुए।

प्रेम महाविद्यालय की अन्तिम रिपोर्ट सन् १९२४-२५ की देखने से पता चलता है कि विद्यालय में इस समय लगभग २७० छात्र विद्याध्ययन कर रहे हैं, वार्षिक आय ८५२६६) है, कुली मजदूरों के अतिरिक्त ४५ सज्जन स्टाफ में हैं। विद्यालय की आधीनता में ६ पाठशालायें और हैं जिनका नाम प्रेम पाठशाला है। यह बुलन्द-शहर जिले में बराल और घमेड़ा तथा मथुरा जिले में हुसैनी जटवारी, उभियानी और मभोई ग्राम में हैं।

साहित्य सेवा—राजा साहब त्यागी और साहसी कार्यकर्त्ता होने के साथ ही साथ साहित्य-सेवी भी हैं। आप हिन्दी के अच्छे लेखक और सम्पादक हैं। जिन्हों ने सन् १९०९ से १९१४ तक की 'प्रेम' की फायलें देखी हैं वह जानते हैं कि राजा साहब के लेख कितने महत्वपूर्ण और गम्भीर होते थे। आप के विचार से हिन्दी ही ऐसी भाषा है जो राष्ट्र भाषा हो सकती है। आपने इसलिये कुछ उद्योग भी किया है। सन् १९०९ से १३ तक आप बराबर 'सरस्वती' और 'मर्य्यादा' में लेख लिखते रहे। विदेशों से भी कई लेख इसी विषय पर भारतीय समाचार पत्रों में प्रकाशित करवाये। आपके द्वारा संस्थापित प्रेम महा विद्यालय में हिन्दी अनिवार्य रक्खी गयी है और समस्त विषयों की शिक्षा हिन्दी में ही दी जाती है। राजा साहब का विचार है कि हिन्दी लिपि चीन, जापान और रूस में प्रचलित की जाय।

अंग्रेजी की रचना—आपने अंग्रेजी में कई पुस्तकें लिखी हैं। जिनमें 'प्रेम धर्म', 'सुख संस्थापक दल का कार्यक्रम' और 'नया धर्म' मुख्य हैं। इन सभी में प्रेम धर्म की व्याख्या, उसका प्रचार, अन्य धर्मों में प्रेम धर्म का समावेश आदि विषयों पर विचार प्रकट किये गये हैं।

नाम परिवर्तन—आप का विचार है कि हिन्दू नाम होने के कारण प्रेम धर्म के प्रचार में अन्य जातियों के सामने बड़ी बाधा पड़ती है। इसलिये आपने अपने दो नाम और भी रक्खे हैं एक मोसेस पीटर (ईसाई नाम) और दूसरा मुहम्मद पीर। आप अब हस्ताक्षर करते समय अपने को "म+प्रताप पीटर-पीर" लिखा करते हैं।

उपसंहार—राजा साहब बड़े ही मिलनसार और मिष्ट भाषी हैं, आपने अपना सारा जीवन मानव जाति की सेवा में अर्पण कर दिया है। आपको जहां भी जो कुछ कार्य मिल जाता है उसी को करके आनन्दित होते हैं। सादा रहन सहन प्रिय और सांसारिक दिखावे के विरोधी हैं। प्रायः देखा गया है कि धनी मानी सेठ साहूकार अथवा राजा महाराओं के गृह में जन्म पाकर अधिकांश मनुष्य भोग विलास में पड़ जाते हैं और देश तथा जाति की सेवा का स्वप्न में भी विचार नहीं करते। धर्म को तो अपने भोग विलास के संमुख भूल ही जाया करते हैं पर राजा

साहब में यह बात नहीं है। आप के जीवन की समस्त घटनाओं का अध्ययन कर जाने पर यह स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि आप के विचार बाल्यकाल से ही उत्तम थे। जिस अछूतोद्धार का कार्य म० गांधी ने सन् १९२१ में उठाया था वह कार्य राजा साहब सन् १९०९ में ही करना चाहते थे। प्रेम महा विद्यालय की स्थापना कर तथा गुरुकुल को ११ हजार का दान कर राजा साहब ने अपने शिक्षा प्रेमी तथा दानवीर होने का परिचय दिया है। एक भारी ज़मींदार होकर भी आप किसान-सेवा में संलग्न रहे। आज कल देशी नरेश प्रायः सरकार की 'जी हुजूरी' करना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं पर राजा साहब में यह बातें न थीं। वह भारत में रहते हुए भी 'प्रेम' द्वारा सरकारी कार्यों की कड़ी आलोचना किया करते थे। आप निर्भीक और साहसी हैं। इतनी आपत्तियां आने पर भी आपने अपने कार्य को नहीं छोड़ा। आप समस्त संसार में प्रेम धर्म का प्रचार करना चाहते हैं। आप ने सारी रियासत और सम्पत्ति पर लात मार कर अपने अनुपम त्याग का परिचय दिया है यह आदर्श प्रत्येक भारतीय नरेश के लिये अनुकरणीय है। अधिकांश भारतवासियों की इच्छा है कि परमात्मा वह दिन शीघ्र लावे जब कि राजा साहब भारत सकुशल लौट कर हम सबको दर्शन दें। आपकी प्रेम मूर्ति अवश्य ही अनेक भारतीयों के हृदय में नवजीवन का संचार करेगी।

निवेदन—पूज्य राजा साहब! मैं आपकी जीविनी उस प्रकार न लिख सका जिस प्रकार लिखना चाहिये। कारण कि आपमें जितनी देश भक्ति है उसका वणन करना मेरी लेखनी की ताकत से बाहर है। मुझ में इतनी बुद्धि नहीं कि उस पवित्र त्याग को अङ्कित कर सकूं। क्षमा कीजिये इस धृष्टता को, जो अयोग्य होते हुए भी आपकी जीवन कथा लिखने का दुस्साहस किया। आप प्रेम पुजारी हैं-एक प्रेमी के नाते इस पुष्पाञ्जली को स्वीकार करें-यही अन्तिम निवेदन है।



परिशिष्ट

'प्रेम धर्म'—यह पहले बतलाया जा चुका है कि राजा साहब आजकल 'प्रेम धर्म' का प्रचार कर रहे हैं। इसके लिये आपने अंग्रेजी में '*The New Religion*' नामक पुस्तक प्रकाशित की है। पाठकों की जानकारी के लिये उसका भाषानुवाद यहां दिया जाता है।

"लोग पूछते हैं कि 'प्रेम धर्म' क्या है? प्रेम धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम, बौद्ध अथवा प्राचीन आर्य धर्म ही है। यह किसी पुराने धर्म से पृथक नहीं है। तुम नहीं समझते हो! तुम कहते हो कि कोई एक रीति किसी एक अथवा एकाधिक धर्म से साम्य रख सकती है, किन्तु सभी धर्मों से, जिन में गहरा पारस्परिक अन्तर है, किस प्रकार मिल सकती है!

मुझे भय है, कि तुम सृष्टि को मेरी तरह नहीं देखते हो। तुम सोचते हो कि एक या दूसरा व्यक्ति एक धार्मिक नियम के तत्व पर है। यही कारण है कि तुम, उदाहरणार्थ इस्लाम को उसके मतके संचालक के नाम पर मुहम्मदी कहते हो, किन्तु यह कारण ठीक नहीं है। किसी व्यक्ति ने आदि पुरुष की सृष्टि नहीं की। किसी भी मनुष्य ने संसार को, जैसा कि वह इस

समय है, नहीं बनाया है। कुछ प्राकृतिक नियमों ने अथवा एक महान् शक्ति ने संसार और प्रथम पुरुष की सृष्टि की है और वे ही नियम आज भी हम लोगों को जीवित रहने में सहायता करते हैं। यद्यपि स्वयं अपने दिल नहीं धड़काते और न अपने शरीर में रक्त का संचालन ही करते हैं किन्तु दिलकी धड़कन और रक्त संचालन की क्रिया स्वयं ही होती रहती है। यह कौन करता है? वास्तव में इन सब क्रियाओंके आधार भूत प्राकृतिक नियम है। यह बड़े प्राकृतिक नियम, जो हमको जीवित रखते हैं, हम लोगों की भलाई के लिये कुछ उच्च विचार भी निर्मित करते हैं। यह विचार या तो वैज्ञानिक अन्वेषण के रूप में हो सकते हैं अथवा धार्मिक नियमों के रूप में। दूसरे शब्दों में प्रकृति स्वयं ही हम लोगों को, हम लोगों की आवश्यकतानुसार अथवा समय व स्थान के अनुसार, धार्मिक नियमों का निर्माण करती है।

मैं विश्वास करता हूं कि जिस प्रकार प्रकृति ने एक बार आर्य धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई मत और इस्लाम की सृष्टि की, उसी प्रकार वही प्रकृति 'प्रेम' धर्म को भी इस समय उपस्थित कर रही है और मैं केवल प्रकृति की इच्छा को प्रकाशित करने का निमित्त हूं। क्या मूर्खता! तुम विचारते हो? तुम अपने हृदय में कहते हो, यह वह पुरानी गाथा है, एक शक्तिहीन आधा पागल मनुष्य खड़ा होता है और घोषित करता है कि वह वही मनुष्य है जिसके लिये संसार बाट जोह रहा था! शायद तुम

इस सब मूर्खता से परेशान हो गये हो। परन्तु मैं कहता हूं, कि क्या तुमने कभी इस विषय को समझने का प्रयत्न किया है कि कभी कभी एक मनुष्य खड़ा होता है और एक धर्म या प्रणाली प्रचलित करता है और प्राय: उसकी यह धारणा होती है कि केवल उसी की प्रचलित प्रणाली संसार का उद्धार कर सकती है और यह भी एक आश्चर्य की बात है कि कुछ थोड़े से मनुष्य सदा ऐसे 'पागलों' के चारों ओर इकट्ठे हो जाते हैं। केवल यही नहीं, लाखों मनुष्य नवीन धर्म के अनुयायी होते जा रहे हैं और वास्तव में वे उसमें इतना विश्वास करते हैं कि वे उसकी रक्षा तथा उन्नति में अपना जीवन तक दे देने की चिन्ता नहीं करते! यह मानव इतिहास की सत्य बात है। यह नियम अब भी मृत नहीं है तुम इसको मूर्खता पूर्ण कह सकते हो परन्तु यह प्रभावित करता है तथा तुम्हारे लिये विचारणीय है।

मैं इस विषय को यहीं छोड़ता हूं और अप्रत्यक्ष रीति से उसे उपस्थित करूंगा। क्या तुमने कभी यह विचार किया है कि तुम्हारे शुष्क ज्ञान से स्त्री पुरुष का पारस्परिक प्रेम मूर्खता है! मनुष्य ऐसी इच्छा क्यों रखते हैं! यह सब असंयत इच्छाएं क्यों? क्या तुमने कभी इनके समझने का प्रयत्न किया है? यह मानव स्वभाव है। वह परम शक्ति जिसने हमारी सृष्टि की और हमारे मानव समाज की रचना की और जो प्रत्येक व्यक्ति को जीवित रखती है, उसी ने इतनी उत्तमता से कुछ इच्छाएं, वासनाएं, कारण और बुद्धि की भी सृष्टि की है जिससे

मानव जाति अपने को जीवित रख सके, उन्नत कर सके और जिस उद्देश्य के निमित्य वह रची गई है उसे पूरा कर सके। दाम्पत्य प्रेम एक छोटा सा चक्र है जो उस बड़े यन्त्र से अपनी धुरी पर घूमता है। उदाहणार्थ चिकित्सा विज्ञान एक दूसरा चक्र है जो मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य की सहायता में अपना कर्तव्य कर रहा है।

इसी प्रकार धर्म मनुष्य को प्रतिकूल परिस्थिति में प्रसन्नता देने के लिये तथा उसे जब कि वह अकेला हो अथवा ध्येय तक पहुंचने में असमर्थ हो रहा हो, पथ भ्रष्ट होने से बचाने का कार्य करता है। धर्म मनुष्य की शक्ति को उन्नत करता है जैसा कि कोई विज्ञान नहीं करता। धर्म मनुष्य में एक अमर आशा और दृढ़ कर्त्तव्य शक्ति का संचार करता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के निमित्त प्रकृति स्वयं धार्मिक विचार उत्पन्न करती रहती है और इनका समय अथवा परिस्थित के अनुसार कम या अधिक प्रचार होता है।

'प्रेम धर्म' की अवस्थिति ही जिसका मैं प्रचार करता हूं-उसकी इस समय की आवश्यकता का प्रमाण है क्योंकि जब तक आवश्यकता नहीं होती उच्च विचार उत्पन्न नहीं होते। मानव समाज की वर्तमान दयनीय और दुःखद परिस्थिति में यह कहां तक सहायक हो सकता है, यह समय ही बतला सकता है।"

इस का दार्शनिक स्वरूप—"एक महान शक्ति ही सदा अमर रहती है। वह कभी कार्य करती है और कभी विश्राम

करती है। इसका विश्राम सृष्टिका अंत है। इसी महानशक्ति के नियमानुसार और व्यक्तियों की सृष्टि और वृद्धि होती है। प्रकृतिकी इसी महान शक्ति से मानव समाज की उत्पत्ति होती है इस महान शक्ति को विश्राम और कर्तृत्व दोनों में सुखका अनुभव होता है। प्रत्येक प्राणी को, स्त्री पुरुष को अपने कार्यों में इस शक्तिकी प्रसन्नताका ध्यान रखना चाहिये। वे सब कार्य जो मानव जातिके हितमें सहायक होते हैं, उसे प्रिय हैं और जिन कार्यों से विषमताकी उत्पत्ति होती है, उसके दुःख के कारण हैं।"

प्रेम—"शुद्ध और सात्त्विक प्रेम, विश्व प्रेमही सब से बड़ी शक्ति है जो सुख के लिये बराबर कार्य करती रहती है।"

इस का रूप—"प्रेम धर्म में प्रविष्ट होने पर प्रत्येक कार्य, जन्म, मृत्यु और विवाह के उत्सव आदि आडम्बर रहित सीधे ढंग से करना होते हैं! धार्मिक और पवित्र शान्तिदायक स्थानों, सभ्यता के केन्द्रों, विशेष कर भारत में वृन्दावन, बुद्ध गया अरब में यरूसलम व मक्का, आदि की यात्रा आवश्यक है। प्रति सप्ताह प्रेम मन्दिर में जाना चाहिये। दिनमें दो बार प्रार्थना व ध्यान करना और प्रेम धर्म की पुस्तक पढ़ना। प्रत्येक ईसाई, मुसलमान बौद्ध व हिन्दू अपने विश्वास के अनुसार प्रार्थना करने को स्वतंत्र है, कोई उपवास करने को बाध्य नहीं, 'प्रेम' धर्म में कोई विशेष दिवस नहीं। तो भी कोई व्यक्ति अपने पड़ोसियों के साथ त्योहार मना सकता है। जहां तक सम्भव हो शाकाहार ठीक है।"

इसका उद्देश्य—"प्रेमका उद्देश्य मानव समाज के हृदय को एकबार पुनः धर्म की ओर कर देना है। मनुष्य धर्म को निरर्थक समझने लगा है अथवा अपनी उदासीनता से उसको निरर्थक बनाता है। प्रेम के अनुगामी मनुष्यों को धर्म में लाने का प्रयत्न करेंगे। प्रेम किसी अन्य धर्म से झगड़ता नहीं है। यह केवल धर्म के बहुत से विशृंखलित नियमों के एकीकरणका प्रयत्न करता है।

यह उद्देश्य प्रेम मन्दिर स्थापित करने से प्रेम धर्मके अनुयाइयों को किसी स्वार्थकी दृष्टि से जैसा कि बहुत सी संस्थाएं करती हैं, नहीं, बल्कि सत्यका उन्हें अनुयायी सिद्ध करते हुये-संगठित किया जाय। निष्काम सेवियों और भिक्षुओं द्वारा अपना धार्मिक प्रचार कर अपना अभीष्ट सिद्ध किया जा सकता है।

प्राचीन धार्मिक रीतियां कुछ भक्तों की आवश्यकता से अधिक भूल से एक दूसरी से इतनी भिन्न हो गई हैं कि यदि तुम किसी एक के लिये कार्य करो तो वह अप्रत्यक्ष रूप से दूसरे धर्म के विरुद्ध माना जाता है। यह पारस्परिक घृणा इतनी बढ़ गयी कि उदाहरणार्थ इस्लाम का नाम इस्लाम में पसन्द नहीं किया जाता। नवीन धार्मिक रीतियां भी समुचित रूप से सर्व व्यापी व पूर्ण नहीं हैं।

किसी भी दशा मे, मैं विश्वास करता हूं कि संसार को 'प्रेम' की आवश्यकता है।"
